GL H 294.5213
PAR
121161
LBSNAA

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
cademy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

121161

अवाप्ति संख्या
Accession No. 22751
वर्ग सख्या
Class No. GLH 294.5213
पुस्तक सख्या
Book No. PAR परम

श्रीरामकृष्ण-शिवानंद स्मृतिग्रंथमाला

पुष्प-बारहवाँ

श्रीरामकृष्ण लीलामृत

द्वितीय भाग

पण्डित द्वारकानाथ तिवारी,

बी. ए. एल् एल्. बी.

श्रीरामकृष्ण आश्रम,

धन्तोली, नागपूर,

सी. पी.

[सर्वाधिकार स्वाधीन] १९३९

प्रकाशक—

स्वामी भास्करेश्वरानंद,

अध्यक्ष—श्रीरामकृष्ण आश्रम,

धन्तोली, नागपूर, (सी. पी.)

मुद्रक—

एल्. एम्. पटले,

रामेश्वर प्रिंटिंग प्रेस, सिताबर्डी, नागपूर.

अर्पण-पत्रिका

॥ श्री ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परमपूज्य स्वर्गीय श्री हरि बलवंत करमरकर वकील (नागपुर निवासी) मुझे पुत्रवत् मानते थे। उन्हीं के सहवास के कारण मुझे मराठी भाषा से किञ्चित् परिचय प्राप्त हुआ था। वे बड़े प्रेमी स्वभाव के, तथा विद्याव्यासंगी और सद्भक्त पुरुष थे। उनके सद्गुणों के संस्मरणार्थ मराठी से अनुवाद किया हुआ यह "श्रीरामकृष्ण लीलामृत" (द्वितीय भाग) उन्हें समर्पण किया जाता है।

विनीत—

दुर्ग-विक्रम संवत् १९९५
श्रावण शुक्ला त्रयोदशी

द्वारकानाथ

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के

जीवनचरित्र का विवरण।

द्वितीय भाग

१८६४–६५ श्रीमत् तोतापुरी का दक्षिणेश्वर में आगमन; श्रीरामकृष्ण का संन्यास ग्रहण तथा वेदान्त साधन।

१८६५–६६ अक्षय की पुजारी के पद पर नियुक्ति; श्रीमत् तोतापुरी का प्रयाण।

१८६६–६७ इस्लामधर्मसाधन और जन्मभूमि दर्शन।

१८६८–६९ पुनरागमन और तीर्थयात्रा।

१८६९–७० हृदय के पत्नी की मृत्यु और उसका द्वितीय विवाह; अक्षय की मृत्यु।

१८७१ मथुरबाबू की मृत्यु।

१८७२–७३ श्री माता जी का दक्षिणेश्वर में आगमन और षोडशी पूजा।

१८७४ रामेश्वर की मृत्यु।

१८७५ ईसाईधर्मसाधन और श्री केशवचन्द्र सेन से प्रथम भेंट।

१८७६ श्री चन्द्रादेवी की मृत्यु।

१८७९ भक्त मण्डली के आगमन का प्रारम्भ।

१८८० श्री नरेन्द्रनाथ का आगमन।

१८७९–८५ भक्त मण्डली का आगमन और लीला।

१८८५ अस्वास्थ्य का प्रारम्भ।

,, (सितम्बर) दक्षिणेश्वर से प्रयाण और शामपुकुर में वास्तव्य।

,, (दिसम्बर) काशीपूर में आगमन।

१८८६ (अगस्त १६,) महासमाधि।

१८९३ शिकागो की सर्वधर्मपरिषद और स्वामी विवेकानन्द जी से हिन्दू धर्म का श्रेष्ठत्व स्थापन।

१८९७ श्रीरामकृष्ण मठ स्थापना।

१९०२ स्वामी विवेकानन्द जी की

१९२० (जुलाई २०) श्री माता जी की महासमाधि।

१९२२ (एप्रिल १०) स्वामी ब्रह्मानन्द जी (राखाल महाराज) की महासमाधि।

अन्य प्रकाशन ।

हिन्दी प्रकाशन ।

१. **श्रीरामकृष्ण लीलामृत** (भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का विशद चरित्र)--पण्डित द्वारकानाथ तिवारी, बी. ए. एल् एल्. बी. कृत तथा महात्मा गांधी द्वारा लिखित भूमिका सहित, सचित्र, प्रथम भाग, ३३७ पृष्ठ, मूल्य १।=) द्वितीय भाग, ३६० पृष्ठ, मूल्य १॥)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें ।

२. **प्रेमयोग** (सचित्र), मूल्य ॥)

३. **प्राच्य और पाश्चात्य** (सचित्र), मूल्य ॥)

४. **परिव्राजक** (भ्रमण वृत्तान्त), मूल्य ।=)

५. **आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग** (सचित्र), मूल्य ॥)

मराठी प्रकाशन ।

१. **भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का विशद चरित्र**-न. रा. परांजपे कृत तथा महात्मा गांधी द्वारा लिखित भूमिका सहित, सचित्र, प्रथम भाग, ३४७ पृष्ठ, द्वितीय भाग, ३६२ पृष्ठ, मूल्य १।।।) प्रत्येक भाग ।

२. **श्रीरामकृष्ण-वाक्सुधा** (सचित्र) -स्वामी ब्रह्मानन्द कृत, मूल्य ।-)

४. **भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का संक्षिप्त चरित्र** (सचित्र)-स. भ. ठोम्बरे, एम्. ए. कृत, मूल्य ०-)॥

४. **शिकागो वक्तृता** (सचित्र)-स्वामी विवेकानन्द कृत, मूल्य ।)

५. **मेरे गुरुदेव** (सचित्र)—स्वामी विवेकानन्द कृत, मूल्य ।)

६. **साधु नागमहाशय चरित्र** (श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख शिष्य)-श्री. वा. सोमण कृत, सचित्र, मूल्य ।=)

यहां पर निम्नलिखित भी प्राप्य हैं:-श्रीरामकृष्ण मिशन के अन्य अंग्रेज़ी प्रकाशन, श्रीरामकृष्ण, पवित्र पावन मातेश्वरी (श्रीरामकृष्ण जी की धर्म पत्नी), स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यों की सुन्दर रंगीन तसवीरें ।

श्रीरामकृष्ण आश्रम,

धन्तोली, नागपूर, सी. पी.

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ
	साधकभाव (गत पुस्तक से आगे)	
१	श्रीरामकृष्ण का वेदान्त साधन	१
२	इस्लामधर्मसाधन और जन्मभूमि दर्शन	३६
३	श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा	४४
४	हृदयराम का वृत्तान्त	६७
५	मथुर की मृत्यु और षोडशी पूजा	७६
६	साधक भाव सम्बन्धी कुछ और बातें	८९
	गुरुभाव	
७	गुरुभाव और गुरु (प्रास्ताविक)	९७
८	श्रीरामकृष्ण का गुरुभाव	११३
९	असाधारण गुणोत्कर्ष	१३८
१०	श्रीरामकृष्ण की शिष्य परीक्षा	१७५
११	श्रीरामकृष्ण का शिष्यप्रेम	१९४
१२	श्रीरामकृष्ण की शिक्षण पद्धति	२१८
१३	श्रीरामकृष्ण की विषय प्रतिपादन करने की शैली	२३०
१४	श्रीरामकृष्ण और श्री केशवचन्द्र सेन	२४६
१५	ब्राह्मसमाज और श्रीरामकृष्ण	२५२

१६	मणिमोहन मल्लिक के घर में ब्राह्मोत्सव	२६१
१७	श्रीरामकृष्ण के पास भक्त मण्डली का आगमन ...	२६८
१८	नरेन्द्रनाथ का परिचय	२७६
१९	श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ	२९९
२०	पानिहाटी का महोत्सव	३३६
२१	कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण का आगमन	३४७
२२	श्रीरामकृष्ण का श्यामपुकुर में निवास	३५५
२३	काशीपुर में अन्तिम दिन और महासमाधि	३७२

नामानुक्रमणिका

———

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नम ॥

—स्वामी विवेकानन्द ।

श्रीरामकृष्ण लीलामृत।

(भाग २ रा)

१—श्रीरामकृष्ण का वेदान्तसाधन।

(१८६५—६६)

" न्यांगटा ने वेदान्त का उपदेश दिया और तीन दिनों में ही मुझे समाधि लग गई। माधवी लता के नीचे मेरी उस समाधि—अवस्था को देखकर वे हतबुद्धि हो गये। वे कहने लगे " अरे! यह क्या है रे?" और तब तो वे मुझसे जाने की आज्ञा माँगने लगे। यह सुनकर मुझे भावावस्था प्राप्त हो गई और उसी अवस्था में मैं बोला, " वेदान्त का बोध हुए बिना आप यहां से नहीं जा सकते।" उसी समय से मैं रातदिन उनके समीप रहने लगा और लगातार वेदान्त की ही बातें चलने लगीं। ब्राह्मणी बोली, " बाबा! वेदान्त मत सुनो। भक्ति का ह्रास होगा।"

" जिस अवस्था में पहुँचकर साधारण साधक वहां से वापस नहीं लौट सकता, तथा जिसमें इक्कीस दिनों में ही उसका शरीर पके हुए पत्ते के समान झड़ जाता है, उसी अवस्था में माता की कृपा से मैं पूरे छः महीने तक रहा!"

—श्रीरामकृष्ण।

मधुरभावसाधन में सिद्ध होकर श्रीरामकृष्ण अब भावसाधन की चरम सीमा में पहुँच चुके थे। अतः अब इसके आगे उनके अपूर्व साधनों का वृत्तान्त लिखने के पूर्व उनकी तत्कालीन मानसिक अवस्था पर विचार करना उचित होगा।

किसी भी भाव की साधना में सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व साधक को संसार के रूप रस आदि सभी भोग्य पदार्थों के विचारों से दूर रहना पड़ता है। प्रसिद्ध भगवद्भक्त तुलसीदास जी की यह उक्ति—

" जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुं होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥ "

यथार्थ में सत्य है। श्रीरामकृष्ण का अलौकिक जीवन इस सिद्धान्त का अत्युत्तम उदाहरण है। काम और कंचन के त्याग की सुदृढ़ नींव पर ही उन्होंने अपने भावसाधन की इमारत खड़ी की और यह नीव कदापि कमज़ोर न होने दी। इसी कारण उन्होंने जिन २ साधनाओं का प्रारम्भ किया, उन सभी में वे स्वल्प काल में ही सिद्ध होते गये। इससे यह स्पष्ट है कि इस समय उनका मन निरन्तर काम और कंचन के प्रलोभन की सीमा से बहुत दूर रहा करता था।

विषय वासनाओं का सर्वथा त्याग करके लगातार नौ वर्ष से अधिक समय ईश्वरप्राप्ति के प्रयत्नों में ही व्यतीत करते रहने के कारण उनका मन एक ऐसी अवस्था में पहुँच गया था कि ईश्वर के सिवाय अन्य किसी विषय का स्मरण या मनन करना उन्हें विषवत् प्रतीत होता था। मनसा, वाचा और कर्मणा ईश्वर को ही सार का सार और परात्पर वस्तु सर्वतोभावेन समझने के कारण उनका मन इहलोक या परलोक की अन्य वस्तुओं की प्राप्ति के सम्बन्ध में बिल्कुल निःस्पृह और उदासीन बन गया था।

रूप रस आदि बाह्य विषयों तथा अपने शारीरिक सुख दुःखों को भूलकर अपने अभीष्ट विषय का अत्यन्त एकाग्रता के साथ ध्यान करने का उन्हें इतना अभ्यास हो गया था कि क्षणार्ध में साधारण प्रयत्न द्वारा ही वे अपने मन को सब विषयों से हटाकर अपने इष्ट विषय में चाहे जिस समय प्रविष्ट करके उसमें

तन्मय होकर आनन्द का अनुभव करते थे। लगातार कई दिन या महीने या वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनके उस विषय के चिन्तन और आनन्दानुभव में कोई कमी नहीं होती थी, और ईश्वर के सिवाय संसार में और भी कोई दूसरी वस्तु प्राप्त करने योग्य है या हो सकती है ऐसी कल्पना क्षणभर के लिये भी उनके मन में उदय नहीं होती थी।

जगत्कारण ईश्वर को "गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्" जानकर उनके प्रति श्रीरामकृष्ण के मन में अनन्य प्रेम, दृढ़ विश्वास और पूर्ण निर्भरता अमर्यादित रूप से व्याप रही थी। इसके कारण वे अपने को ईश्वर के अत्यन्त निकट प्रेमी या सम्बन्धी होने का ही अनुभव करते हों सो ही नहीं वरन् जैसे बालक अपनी माता के भरोसे पर रहते हुए उसके प्रेम और छत्रछाया में सदा निश्चिन्त रहता है, वैसी ही स्थिति साधक के मन की हो जाने पर अपने अनन्य प्रेम के कारण वह ईश्वर को सदा अपने समीपस्थ अनुभव करता है, ईश्वर को अपने पास प्रत्यक्ष देखता है, ईश्वर से बोलता है, ईश्वर की वाणी को सुनता है और ईश्वर के करकमल की छाया में रहते हुए सदा निर्भय बनकर संसार में निःशङ्क विचरता है—इस बात का प्रमाण अनेक बार पाने के कारण उन्हें अब छोटे बड़े सभी कार्यों में श्री जगदम्बा का आदेश प्राप्त करके उसी की प्रेरणा के अनुसार निर्भयतापूर्ण व्यवहार करने का पूर्णतः अभ्यास हो गया था।

कदाचित् यह शङ्का हो सकती है कि जगत्कारण के इस प्रकार स्नेहमयी माता के रूप में सदा अपने समीप रहने पर अब श्रीरामकृष्ण को आगे साधना करने की क्या आवश्यकता थी। जिसको प्राप्त करने के लिये साधक योग, तपस्या आदि करता है उसे ही यदि प्राप्त कर चुके या अपना चुके तब फिर और साधना किसके लिये की जावे? इसकी चर्चा एक बार इसके पूर्व एक दृष्टि से की जा चुकी है, तथापि इस सम्बन्ध में और भी एक दो बातें हम पाठकों को बताते हैं। श्रीरामकृष्ण के चरणकमलों के पास बैठकर उनके साधनेतिहास का मधुपान करते समय हमें भी यही शङ्का हुई और जब हमने उसे श्रीरामकृष्ण के पास प्रकट की, तब वे बोले—"देखो समुद्र के किनारे सदा निवास करने वाले व्यक्ति के मन में भी कभी २ यह इच्छा हो जाया करती है कि देखें तो भला इस रत्नाकर के गर्भ

में कैसे २ रत्न हैं। उसी प्रकार माता को प्राप्त कर लेने पर और सदा उसके साथ रहते हुए भी उस समय मेरे मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो जाती थी कि अनन्त-भावमयी अनन्तरूपिणी माता का भिन्न २ भावों और भिन्न २ रूपों में मैं दर्शन करूं। अतः जिस समय जिस विशेष भाव से या रूप में उसके दर्शन की इच्छा मुझे होती थी, उसी भाव या रूप में दर्शन देने के लिये मैं व्याकुल अन्तःकरण से उसके पास हठ पकड़ता था और मेरी दयामयी माता भी उसी समय अपने उस भाव से दर्शन देने के लिये जिन २ वस्तुओं की आवश्यकता होती थी उनके संग्रह का सुभीता स्वयं करा देती, मेरे द्वारा अपनी यथोचित सेवा करा लेती और मुझे मेरे वांछित भाव या रूप में दर्शन दे देती थी! इसी प्रकार माता ने मेरे द्वारा भिन्न २ मतों की साधनाएँ कराईं।"

पीछे कह चुके हैं कि मधुरभाव में सिद्ध होकर श्रीरामकृष्ण भावसाधन की अन्तिमभूमिका में पहुँच गये थे। तदुपरान्त उनके मन में सर्व-भावातीत वेदान्तोक्त अद्वैतभाव के साधन करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मधुरभाव के साधन के बाद अद्वैतभाव के ही साधन की इच्छा श्रीरामकृष्ण को क्यों हुई? इस पर विचार करने से इसमें भी कोई हेतु दिखाई देता है। भावराज्य और भावातीत राज्य में परस्पर कार्यकारण सम्बन्ध सदा दिखाई देता है क्योंकि भावातीत अद्वैत राज्य में का भूमानन्द ही मर्यादित बन कर भावराज्य में दर्शन स्पर्शनादि संभोगजन्य आनन्दरूप से प्रकट हुआ करता है। इसी कारण मधुरभाव की पराकाष्ठा प्राप्त होने पर, भावराज्य की चरम सीमा तक पहुँच चुकने पर, भावातीत अद्वैत भूमिका के सिवाय उनका मन अन्यत्र कहां आकृष्ट हो? अद्वैतभावसाधन का वर्णन करने के पूर्व लगभग इसी समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख करके मुख्य विषय की ओर हम आएंगे।

श्रीरामकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता रामकुमार की मृत्यु होने पर उनकी शोक-संतप्ता वृद्धा माता अपने और दो पुत्रों का मुख देखते हुए किसी प्रकार कड़ी छाती करके अपने दिन बिताने लगी। पर थोड़े ही दिनों के बाद जब उसने लोगों के मुँह से अपने कनिष्ठ पुत्र गदाधर के पागल होने का हाल सुना तब तो उसके दुःख की सीमा न रही। पुत्र को अपने घर बुलवाकर माता ने उसकी चिकित्सा

कराई और दैवी कोप की शान्ति के लिये स्वस्त्ययन आदि अनुष्ठान भी कराये और जब उसने पुत्र के स्वास्थ्य को सुधारते देखा तब कहीं उस वृद्धा के जी में जी आया। "आशा बड़ी बलवती होती है।" पुत्र के कल्याण की आशा से उसने उसका विवाह कर दिया। परन्तु विवाह के बाद दक्षिणेश्वर में अपने काम पर लौटते ही गदाधर की पुनः वही अवस्था हो गई यह सुनकर माता का धीरज छूट गया। यद्यपि मुकुन्दपुर के जागृत महादेव ने गदाधर को दिव्योन्माद होने का दैवी निर्णय प्रकट किया था तथापि माता का मन संसार से उचट गया और उसने अपनी अवशिष्ट आयु भागीरथी के किनारे दक्षिणेश्वर में अपने उस कनिष्ठ पुत्र के ही साथ रहकर बिताने का निश्चय किया और तदनुसार वह दक्षिणेश्वर में ही आकर रहने लगी (सन् १८६४)। मथुरबाबू ने उसके रहने के लिये नौबतखाने में सब प्रकार का प्रबन्ध कर दिया और उसकी सेवा में एक दासी भी नियुक्त कर दी। स्वयं श्रीरामकृष्ण भी नित्य प्रातः सायं वहां जाकर कुछ समय तक उसकी सेवा-शुश्रुषा करते थे। मथुरबाबू के अन्नमेरुव्रत अनुष्ठान की वार्ता पीछे कह चुके हैं। लगभग उसी अनुष्ठान के समय वह दक्षिणेश्वर में आई और उस समय से अपनी आयु के अन्तिम * बारह वर्ष की अवधि उसने दक्षिणेश्वर में ही व्यतीत की अर्थात् श्रीरामकृष्ण ने वात्सल्य, मधुर और अद्वैत भावों का साधन श्री चन्द्रादेवी के दक्षिणेश्वर में रहते समय किया।

---

* चन्द्रादेवी का स्वर्गवास सन् १८७६ में हुआ। उसकी उत्तर-क्रिया श्रीरामकृष्ण ने स्वयं संन्यासी होने के कारण अपने भतीजे रामलाल के हाथ से कराई। माता की मृत्यु से उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। अपनी माता की उत्तर क्रिया अपने हाथों न कर सकने के कारण उन्हें खेद हुआ और वे एक दिन उसके नाम से तर्पण करने बैठे, परन्तु हाथ में जल लेते ही अंगुलियां ऐंठने लगीं और सम्पूर्ण जल गिर पड़ा! एक दो बार इसी तरह हो जाने पर वे रो पड़े और "माता! तेरे नाम से तर्पण करना भी मुझसे नहीं बनता" ऐसा कहते हुए वे समाधिमग्न हो गये। बाद में एक पण्डित के मुँह से उन्होंने सुना कि आध्यात्मिक उन्नति की पराकाष्ठा में पहुँच जाने पर "गलितकर्म-अवस्था" प्राप्त हो जाती है तब सभी कर्म आप ही आप नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमती चन्द्रादेवी के निर्लोभ और उदार स्वभाव का एक उदाहरण यहां पर देना उचित होगा। यह घटना श्री चन्द्रादेवी के दक्षिणेश्वर आने के कुछ ही दिनों के पश्चात् हुई। पीछे कह आये हैं कि इस समय काली मन्दिर के प्रबन्ध का सारा अधिकार मथुरानाथ के हाथ में आ गया था और वे मुक्तहस्त होकर कई प्रकार के सत्कार्यों में पैसा खर्च कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण पर उनकी अपार भक्ति, श्रद्धा और प्रेम होने के कारण उन्हें इस बात की सदा चिन्ता बनी रहती थी कि उनके बाद श्रीरामकृष्ण का प्रबन्ध ठीक २ कैसे होगा; परन्तु श्रीरामकृष्ण के तीव्र वैराग्य के कारण उनके सामने इस विषय की चर्चा करने का उन्हें साहस ही नहीं होता था। क्योंकि इसके पहले एक बार उन्होंने हृदय से जान बूझकर यह कहा था कि "श्रीरामकृष्ण के नाम से बैंक में कुछ रकम जमा कर देने का मेरा इरादा है।" ऐसा कहने से उनका उद्देश यही था कि हृदय यह बात श्रीरामकृष्ण से कहेंगे तब यह बात उन्हें कहां तक पसन्द है सो अन्दाज करते बनेगा। पर इसका परिणाम कुछ और ही हुआ। इसके पश्चात् मथुरबाबू और श्रीरामकृष्ण की भेंट का अवसर आते ही श्रीरामकृष्ण, किसी उन्मत्त के समान, हाथ में लाठी लेकर मथुरबाबू की तरफ झपटे और "क्या तू मुझको विषयी बनाना चाहता है?" ऐसा चिल्लाते हुए उन्हें मारने को तैयार हो गये! इस घटना के कारण श्रीरामकृष्ण के नाम से कुछ तजवीज़ कर देने की उनकी उत्कट इच्छा के पूर्ण होने की कोई सम्भावना नहीं दिखती थी। परन्तु अब श्रीमती चन्द्रादेवी के यहीं रहने के लिये आ जाने के कारण उन्हें अपनी उस इच्छा के सफल होने की कुछ आशा दिखाई देने लगी। वे (मथूरबाबू) नित्य उसके यहां जाते थे और बड़े आदर से "माता जी! माता जी!" कहकर उससे वार्तालाप किया करते थे। ऐसे प्रेमयुक्त व्यवहार से वे थोड़े ही दिनों में चन्द्रादेवी को भी प्रिय हो गये। बाद में एक दिन अच्छा अवसर पाकर बातों ही बातों में मथुरबाबू ने कहा, "माता जी! आप इतने दिनों से यहां हैं पर मुझसे आपने कोई सेवा करने को नहीं कहा। आप ऐसा क्यों करती हैं? यदि आप मुझे यथार्थ में "अपना" जानती हैं तो आपके मन में जो आवे सो मुझसे आपको अवश्य माँगना चाहिये।" सरल स्वभाव वाली माता को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा। उसने बहुत सोचकर देखा पर उसे किसी वस्तु की कमी नहीं मालूम पड़ी। तब वह मथुरबाबू

से बोली–" बाबू ! तेरे यहां मेरे लिये किसी वस्तु की कमी नहीं है। यदि किसी वस्तु की कभी जरूरत होगी तो मैं तुझसे माँग लूंगी, तब तो ठीक होगा न ? " ऐसा कहते हुए चन्द्रादेवी ने अपना सन्दूक खोलकर दिखा दिया और वह बोली, " यह देखो, मेरे पास अभी तक इतने कपड़े बचे हुए हैं और यहां खाने पीने की तो कोई चिन्ता ही नहीं है; उसका पूर्ण प्रबन्ध तो तूने पहले से ही कर रखा है और अब तक तू कर ही रहा है; अब भला इतने पर भी ऐसी कौन सी वस्तु है जिसे मैं तुझसे माँगूं ? " पर मथुरबाबू ने किसी तरह पीछा नहीं छोड़ा। वे तो " मुझसे आज कुछ तो माँगो " ऐसा हठ ठानकर बैठ गये। बहुत कुछ विचार करने पर चन्द्रादेवी को अपनी जरूरत की एक वस्तु का स्मरण हो आया और वह बोली, " अच्छा, बाबू ! तुम जब इस तरह देने पर ही तुले हो तो अभी मेरे पास तम्बाखू नहीं है, इसलिये चार पैसे की तम्बाखू ला दो ! " विषयी मथुरानाथ की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये और वे उसे प्रणाम करते हुए बोले, " धन्य है ! माता ऐसी न हो तो ऐसा अलौकिक पुत्र कैसे जन्म ले ! " इतना कहकर उन्होंने चार पैसे की तम्बाखू मंगाकर चन्द्रादेवी को दे दिया।

श्रीरामकृष्ण के वेदान्तसाधन प्रारम्भ करने के समय उनके चचेरे भाई हलधारी श्री राधागोविन्द जी के पुजारी के पद पर नियुक्त थे। उमर में बड़े होने और श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रीय ग्रन्थों का कुछ अभ्यास होने के कारण उन्हें कुछ अभिमान या अहंकार था जिससे वे श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक अवस्था को मस्तिष्क–विकार कहा करते थे; इस उक्ति को सुनकर श्रीरामकृष्ण के मन में संशय उत्पन्न होता था और इस संशय के निवारण के लिये वे बारम्बार किस तरह श्री जगदम्बा की शरण में जाया करते थे और उन दोनों में इस विषय के सम्बन्ध में सदा किस प्रकार विवाद चला करता था, इत्यादि सब वृत्तान्त हम पहिले कह आये हैं। मधुरभावसाधन के समय श्रीरामकृष्ण के स्त्रीवेष आदि को देखकर तो उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि श्रीरामकृष्ण अवश्य ही पागल हो गये हैं। श्रीरामकृष्ण के मुख से यह सुना है कि वेदान्तसाधन के समय हलधारी दक्षिणेश्वर में थे और उनका तथा श्री तोतापुरी का अध्यात्म विषय पर कभी २ वादविवाद हुआ करता था। एक बार इन दोनों में इसी तरह अध्यात्मरामायण विषयक विवाद

चलते समय श्रीरामकृष्ण को श्री सीता और लक्ष्मण जी सहित श्री रामचन्द्र जी का दर्शन हुआ था।

सन् १८६५ के आरम्भ में श्री तोतापुरी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। उसके कुछ ही महीनों के बाद बीमार हो जाने के कारण हलधारी ने पुजारी का पद त्याग दिया और उनके स्थान में श्रीरामकृष्ण के भतीजे अक्षय (रामकुमार के पुत्र) की नियुक्ति हुई।

अन्य साधनों के समान वेदान्तसाधन के समय भी श्रीरामकृष्ण को गुरु ढूंढ़ना नहीं पड़ा। स्वयं गुरू ही उनके पास आ पहुँचे। श्रीरामकृष्ण के वेदान्त साधन का इतिहास बताने के पूर्व उनके गुरू का जो वृत्तान्त उपलब्ध हो सका है वह इस प्रकार है।

श्रीमत् परमहंस तोतापुरी जी अच्छे ऊँचे पूरे दीर्घाकृति के भव्य पुरुष थे। लगातार चालीस वर्षों की दीर्घ तपस्या द्वारा उन्होंने निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त की थी। तथापि वे अपना बहुत सा समय ध्यान धारणा और समाधि में ही बिताते थे। वे सदा नग्न ही रहते थे और इसी कारण श्रीरामकृष्ण "न्यांगटा" (नग्न) नाम से उनका उल्लेख किया करते थे। सम्भव है गुरू का नाम न लेने के कारण उन्होंने उनका यह बनावटी नाम रखा हो। तोतापुरी कभी घर में नहीं रहते थे। नागा सम्प्रदाय के होने के कारण वे अग्नि पूजा किया करते थे। नागापंथी साधु लोग अग्नि को बहुत पवित्र मानते हैं और वे चाहे कहीं जावें सदा सर्वकाल अपने पास अग्नि प्रज्वलित रखते हैं जिसका सामान्य नाम "धूनी" है। नागापंथी साधु प्रातः सायं धूनी की पूजा और आरती करते हैं और भिक्षा में मिले हुए अन्न को पहिले अग्नि को नैवेद्य लगाकर फिर स्वयं ग्रहण करते हैं। दक्षिणेश्वर में रहते समय श्री तोतापुरी पंचवटी के नीचे ही रहते थे और वहीं उनकी धूनी सदा प्रज्वलित रहती थी। ग्रीष्म ऋतु हो अथवा वर्षा ऋतु हो धूनी सर्वदा जलती ही रहती थी। उनका खानपान, शयनविश्राम, उठना बैठना सब उसी धूनी के पास होता था और रात्रि हो जाने पर जब थकामांदा सारा संसार अपनी चिन्ताओं और दुःखों को भूलकर विराम-

दायिनी निद्रादेवी की गोद में शान्तिसुख के अनुभव करने में निमग्न रहता है उस समय श्री तोतापुरी उठकर अपनी धूनी को अधिक प्रज्वलित करते थे और उसके समीप दृढ़ आसन जमाकर अपने निवात निष्कंप प्रदीप के समान मन को गम्भीर समाधि में निमग्न कर लेते थे। दिन में भी वे बहुत सा समय ध्यान में बिताते थे पर उनका वह ध्यान साधारण लोगों की समझ में आने योग्य नहीं होता था क्योंकि वे उस समय वस्त्र से अपने सारे शरीर को ढांक कर धूनी के समीप सोते से दिखाई देते थे। देखने वाले लोग समझते थे कि तोतापुरी सोये हुए हैं।

एक लोटा, एक लम्बा चिमटा और एक आसन यही श्री तोतापुरी का सामान था। वे एक लम्बी चौड़ी चादर से अपने शरीर को सदा लपेटे रहते थे। अपने लोटे और चिमटे को रोज़ घिसकर माँजते थे और चमकीला बनाये रखते थे। उन्हें रोज़ अपना बहुत सा समय ध्यान में बिताते देख श्रीरामकृष्ण ने एक दिन पूछा कि–"आप को तो ब्रह्मज्ञान हो गया है, आप तो सिद्ध हो चुके हैं, फिर आपको इस तरह प्रतिदिन ध्यानाभ्यास की क्या आवश्यकता है?" तोतापुरी गम्भीरतापूर्वक श्रीरामकृष्ण की ओर देखते हुए बोले, "देख मेरे इस लोटे की ओर। देखा यह कैसा चमक रहा है। और यदि मैं इसे रोज न माँजूं तो क्या होगा? तब क्या यह बिना मैला हुए रहेगा? मन की भी बिल्कुल यही दशा है। ध्यानाभ्यास द्वारा मन को भी यदि प्रतिदिन इसी प्रकार माँज धोकरस्वच्छ न करो तो वह भी मलिन हो जाता है।" तीक्ष्ण बुद्धिमान श्रीरामकृष्ण ने अपने गुरू का यह उत्तर सुनकर पुनः पूछा—"परन्तु यदि लोटा सोने का हो तब तो रोज़ न माँजने पर भी वह मलिन नहीं होगा?" तोतापुरी हँसते हुए बोले, "हां, यह तो सच है।" ध्यानाभ्यास की आवश्यकता की यह बात श्रीरामकृष्ण के मन में सदैव बनी रहती थी और प्रसंगानुसार वे सदा इसका उल्लेख करते थे।

वेदान्तशास्त्र का वाक्य है कि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य पूर्ण निर्भय हो जाता है, मैं स्वयं ही नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व-व्यापी अजर अमर आत्मा हूं यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाने पर उसके मन में भय ही किसका और कहां से उत्पन्न हो? जगत में एक "सत्" वस्तु के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है ऐसा जिसने प्रत्यक्ष देख लिया है उसे भय किसका?

श्रीमत् परमहंस तोतापुरी इसी उच्च कोटि के जीवन्मुक्त महापुरुष थे। चालीस वर्ष के दीर्घोद्योग द्वारा उन्हें यह अवस्था प्राप्त हुई थी। इसलिये उनकी दिनचर्या भी साधारण मनुष्य के समान नहीं थी। नित्यमुक्त वायु के समान वे जहां मन चाहता था वहां विचरते रहते थे। संसार के कोई भी गुण दोष उन्हें वायु के समान ही स्पर्श नहीं कर सकते थे और वायु के सदृश वे एक ही स्थान में कभी अधिक समय तक बंधकर नहीं रहते थे। वे तीन दिनों से अधिक किसी एक ही स्थान में कभी नहीं रहते थे। परन्तु श्रीरामकृष्ण की अद्भुत मोहिनी शक्ति ऐसी प्रबल थी कि वहीं तोतापुरी श्रीरामकृष्ण के पास ग्यारह महीने रहे! अस्तु—

तोतापुरी की निर्भयता के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण हमें अनेक बातें बताते थे। उनमें से एक घटना दक्षिणेश्वर में ही हुई थी। एक दिन रात्रि के समय सर्वत्र सूनसान हो जाने पर तोतापुरी नित्य के समान अपनी धूनी को अधिक प्रज्वलित करके ध्यान में बैठने की तैयारी में थे। सब ओर शान्ति का ही साम्राज्य था। कीड़ों की आवाज़ के सिवाय और कुछ नहीं सुनाई देता था। हवा भी नहीं चल रही थी। इतने में अकस्मात् पंचवटी के पेड़ों की डालियां हिलने लगी और पेड़ पर से एक बड़ा ऊँचा पूरा भव्य पुरुष नीचे उतरा और तोतापुरी की ओर एकटक देखते हुए एक एक पग आराम से रखते २ बिल्कुल उनके समीप आ गया और धूनी के एक ओर जाकर बैठ गया। उसे देखकर तोतापुरी ने आश्चर्ययुक्त होकर उससे पूछा, "तू कौन है?" उस पुरुष ने उत्तर दिया—"मैं देवयोनी का हूं, भैरव हूं, इस देवस्थान की रक्षा करने के लिये मैं सदा इसी वृक्ष पर रहता हूं।" तोतापुरी तिलमात्र भी चलविचल न हुए और उससे बोले, "वाह! ठीक है। जो तू है वही मैं भी हूं। तू भी ब्रह्म का एक रूप है और मैं भी ब्रह्म का ही एक रूप हूं। आ, यहां बैठ और ध्यान कर।" यह सुनकर वह पुरुष हँसा और देखते ही देखते अदृश्य हो गया और मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार निश्चिन्त वृत्ति से शान्ति के साथ तोतापुरी ने भी अपना ध्यान प्रारम्भ किया! दूसरे दिन सबेरे श्रीरामकृष्ण के आते ही उन्होंने उनसे रात की घटना बताई जिसे सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, "हां, वह यहां रहता अवश्य है, मुझे भी कई बार उसका दर्शन हुआ है, कभी २ तो मुझे भविष्य में होने वाली बातें भी बताता है। एक बार पंचवटी की सारी ज़मीन बारूदखाने (Powder

magazine) के लिये लेने का प्रयत्न कम्पनी कर रही थी यह सुनकर मुझे चैन नहीं पड़ती थी। संसार के सारे कोलाहल से दूर हटकर एक कोने में माता का शान्तिपूर्वक चिन्तन करने के लिये अच्छी जगह मिल गई थी; पर यदि इसे कम्पनी ले लेगी तो ऐसी जगह फिर कहां मिलेगी—इसी चिन्ता में मुझे कुछ नहीं सूझता था। रासमणि की ओर से मथुरबाबू ने भी इस ज़मीन को बचाने की बड़ी कोशिश की। ऐसे समय में एक दिन यह भैरव मुझे पेड़ पर बैठा हुआ दिखाई दिया और मुझे पुकार कर बोला—" डरो मत। यह जगह कम्पनी नहीं ले सकेगी। अदालत में कम्पनी के विरुद्ध फैसला होगा।" और बाद में हुआ भी ऐसा ही! अस्तु—

श्री तोतापुरी का जन्म पश्चिम हिन्दुस्थान में किसी स्थान में हुआ था पर गांव के नाम का पता श्रीरामकृष्ण की बातों से नहीं चला। सम्भव है उन्होंने तोतापुरी से इस विषय में न पूछा हो, क्योंकि संन्यासी लोग अपने पूर्वाश्रम की वार्ता–नाम, ग्राम, गोत्र आदि–कभी किसी को नहीं बताते। ऐसी बातें संन्यासी से पूछना और संन्यासी को इनका उत्तर देना शास्त्रनिषिद्ध हैं। इसीलिये श्रीरामकृष्ण ने ये बातें नहीं पूछी होंगी। तथापि श्रीरामकृष्ण के ब्रह्मलीन होने के बाद उनके संन्यासी शिष्यों को पंजाब, हिमालय आदि की ओर घूमते २ वृद्ध संन्यासियों से पता लगा कि तोतापुरी पंजाब के आसपास के रहनेवाले थे। उनके गुरू का मठ कुरुक्षेत्र के समीप लुधियाना नामक ग्राम में था। वे भी एक प्रसिद्ध योगी थे। लुधियाने का मठ उन्होंने ही स्थापित किया या उनके गुरू ने, इसका पता नहीं लगता। तथापि तोतापुरी के गुरु इस मठ के महंत थे और प्रतिवर्ष उस मठ में उनका उत्सव भी मनाया जाता है यह इन भ्रमण करनेवाले संन्यासियों को पता लगा। वे तम्बाखू खाते थे। अतः उत्सव में अभी भी लोग तम्बाखू लेकर आते हैं और मठवालों को बाँटते हैं। गुरू के समाधिस्थ होने पर श्रीमत् तोतापुरी गुरू की गद्दी पर बैठे।

श्री तोतापुरी ने बचपन से ही अपने गुरू के साथ रहते हुए साधन आदि का अभ्यास उन्हीं के निरीक्षण में किया था। तोतापुरी की बताई हुई वार्ताओं में से कुछ २ बातें श्रीरामकृष्ण हमसे कहा करते थे। वे कहते थे, " न्यांगटा

कहता था कि हमारी जमात (मंडली) में सात सौ नागा थे। जो पहिले ही ध्यान करना सीखना शुरू करते थे उन्हें पहिले गद्दी पर बैठालकर ध्यान करना सिखाया जाता था क्योंकि कड़े आसन पर बैठने से पैर में दर्द होता है और सब ध्यान ईश्वर की ओर जाने के बदले शरीर की ही ओर चला जाता है। गद्दी पर बैठकर ध्यान लगाने का अभ्यास हो जाने के बाद उसे उत्तरोत्तर कड़े आसन पर बिठाया जाता था और अन्त में केवल चर्मासन या खाली ज़मीन पर ही बैठकर ध्यान करना पड़ता था। आहार आदि सभी विषयों में इसी प्रकार के नियम थे। पहिनने के कपड़ों के बारे में भी यही अवस्था थी। धीरे २ उसे नग्न रहने का अभ्यास करना पड़ता था। लज्जा, घृणा, भय, जाति, कुल, शील इत्यादि अष्टपाशों द्वारा मनुष्य जन्म से बंधा रहता है। अतः क्रमशः प्रत्येक को त्याग करने की शिक्षा दी जाती थी। जब ध्यान आदि में शिष्य प्रवीणता प्राप्त कर लेता था तब उसे प्रथम अन्य साधुओं के साथ और पश्चात् अकेले ही तीर्थाटन करने के लिये जाना पड़ता था। सभी बातों में उस जमात के ऐसे ही सूक्ष्म नियम थे। महंत चुनाई की प्रथा के विषय में श्रीरामकृष्ण बताते थे कि "उनकी मंडली में से जो संन्यासी परमहंस पद को पहुँच चुका हो उसी को गद्दी खाली होने पर वे महंत बनाते थे। यदि ऐसा न किया जावे तो पैसा और अधिकार दोनों प्राप्त हो जाने से किसी अधकचरे संन्यासी के भ्रष्ट हो जाने की संभावना रहती है। इसीलिये जो पूर्णतः कंचन त्यागी हो उसी को वे अपना महंत चुनकर उस के हाथ में पैसे का कुल कारोबार सौंप देते थे जिससे कि उसके सद्व्यय की चिन्ता का कोई कारण ही शेष नहीं रहता था।" अस्तु—

नर्मदा तीर से प्रस्थान करके गंगा सागर का स्नान और श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ जी की यात्रा करके घूमते घामते श्री तोतापुरी परमहंस जी पंजाब में अपने मठ को वापस जाते हुए रास्ते में दक्षिणेश्वर में उतरे। वहां दो तीन दिन रहकर आगे जाने का उनका विचार था। वहाँ उन्हें लाने में श्री जगदम्बा देवी का कौनसा उद्देश था इसकी उन्हें कुछ भी कल्पना नहीं थी।

काली मन्दिर में आकर श्री तोतापुरी पहिले घाट पर गये। वहां एक किनारे पर अन्य लोगों के समान ही एक वस्त्र लपेटकर श्रीरामकृष्ण ईश्वरचिन्तन

में तल्लीन बैठे थे। उनके तेजःपुंज और भावोज्ज्वल मुखाकृति की ओर दृष्टि जाते ही तोतापुरी को निश्चय हो गया कि ये असाधारण पुरुष हैं। वेदान्तसाधन के लिये इतना उत्तम अधिकारी विरला ही दिखाई देता है। "तंत्र मार्गी बंगाल में वेदान्त का ऐसा अधिकारी पुरुष मिलना आश्चर्य की बात है" ऐसा कहते हुए वे बड़े कुतूहल से श्रीरामकृष्ण के पास गये और उनकी ओर बारीकी से देखकर अपने अनुमान का ठीक होने का निश्चय हो जाने पर वे श्रीरामकृष्ण से बोले, "तू मुझे वेदान्तसाधन के लिये उत्तम अधिकारी प्रतीत होता है। क्या तेरी वेदान्त साधन करने की इच्छा है?"

श्रीरामकृष्ण—"मैं वेदान्तसाधन करूं या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, यह सब मेरी माता जाने। माता कहेगी तो करूंगा।"

तोतापुरी—"तो फिर जा, अपनी माता से पूछकर शीघ्र आ क्योंकि मुझे यहां अधिक दिनों तक रहने का अवकाश नहीं है।" श्रीरामकृष्ण इस पर कुछ नहीं बोले। वे वैसे ही सीधे श्री जगदम्बा के मन्दिर में चले गये। वहां भावाविष्ट अवस्था में उन्हें श्री जगदम्बा ने कहा, "जा सीख। वेदान्त की शिक्षा दिलाने के लिये ही उस संन्यासी को लाई हूं।"

श्रीरामकृष्ण वहां से उठकर बड़े हर्ष से तोतापुरी के पास आये और अपनी माता की आज्ञा प्राप्त होने का वृत्तान्त उन्होंने उनसे बताया। मन्दिर की देवी को ही यह प्रेम से माता कहता है यह बात तब कहीं श्री तोतापुरी के ध्यान में आई और श्रीरामकृष्ण के बालकवत् सरल स्वभाव को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और इनके इस प्रकार के स्वभाव को अज्ञान और कुसंस्कार का परिणाम समझकर उन्हें श्रीरामकृष्ण की दशा को देखकर दया आई। क्योंकि वे तो थे कट्टर वेदान्ती; उन्हें वेदान्तोक्त कर्मफलदाता ईश्वर के सिवाय अन्य कोई देव विदित ही नहीं था। निर्गुण ब्रह्म के ध्यानाभ्यास से ही निर्विकल्प समाधि अवस्था में पहुँचे हुए श्री तोतापुरी को श्रीरामकृष्ण के समान उत्तम अधिकारी पुरुष का सगुण ब्रह्म पर बालक के समान सरल विश्वास रखना असंगत मालूम पड़ा। पुनश्च श्रीरामकृष्ण की माता कौन थी? वही त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति माया।

माया को तो तोतापुरी केवल भ्रम ही समझते थे और उसके अस्तित्व को मानने की या उसकी उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं है यही उनका सिद्धान्त था। इसीलिये वे यह मानते थे कि अज्ञान के बंधन से मुक्त होने के लिये ईश्वर की या शक्तिसंयुक्त ब्रह्म की आराधना करने की कोई आवश्यकता साधक को नहीं रहा करती, यह सब तो स्वयं उसके प्रयत्न पर अवलम्बित है। अस्तु—

मुझसे दीक्षा लेकर ज्ञानमार्ग की साधना प्रारम्भ करने से इसके ये संस्कार और अज्ञान शीघ्र ही दूर हो जावेंगे ऐसा सोचकर तोतापुरी ने इसके सम्बन्ध में और कुछ न कह कर दूसरा विषय प्रारम्भ किया। वे बोले, "वेदान्तसाधन की दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व तुझे शिखा-सूत्र का त्याग करके यथाशास्त्र संन्यास ग्रहण करना होगा।" श्रीरामकृष्ण ने कुछ विचार के बाद उत्तर दिया कि "यदि यह सब गुप्त रीति से हो सके तब तो ठीक है, पर प्रकट रूप से संन्यास लेने में मेरी वृद्धा माता को बड़ा दुःख होगा और उसका दुःख मुझसे देखा नहीं जा सकता।" तोतापुरी ने उनका कहना मान लिया और "अच्छा मुहूर्त देखकर तुझे गुप्त रूप से संन्यास दूंगा" कहकर वे इधर उधर की अन्य बातें करने लगे। तत्पश्चात् वे काली मन्दिर के उत्तरी भाग में रमणीय पंचवटी के नीचे आसन बिछाकर बैठ गये।

फिर शुभमुहूर्त देखकर श्रीमान् तोतापुरी ने श्रीरामकृष्ण को अपने पितृपुरुषों की तृप्ति के लिये श्राद्धादि क्रिया करने के लिये कहा। उसकी समाप्ति होने पर उन्होंने उनसे स्वयं अपना भी श्राद्ध यथाविधि कराया। इसका कारण यह है कि संन्यासग्रहण के समय से ही साधक को "भूः" आदि सर्व लोकों की प्राप्ति की आशा और अधिकार त्याग देना पड़ता है। अतः उसके पूर्व ही साधक को स्वयं अपना श्राद्ध कर डालना चाहिये यही शास्त्र की आज्ञा है।

जिसे गुरु कहते थे उस पर पूर्ण भरोसा रखकर उसी के कहने के अनुसार अक्षरशः कार्य करने का श्रीरामकृष्ण का स्वभाव ही था, अतः श्रीमान् तोतापुरी ने जैसी आज्ञा दी उसका अक्षरशः पालन श्रीरामकृष्ण ने किया। श्राद्धादि पूर्व

क्रिया समाप्त होने पर उन्होंने व्रत धारण किया और गुरू की बताई हुई सब सामग्री को एकत्र करके उन्हें पंचवटी के नीचे अपने साधन कुटीर में ठीक तरह से रख दिया और वे उत्कण्ठापूर्वक शुभमुहूर्त की राह देखते बैठे रहे!

रात बीत गई। शुभ ब्राह्म मुहूर्त का समय देखकर यह गुरु-शिष्य की अलौकिक जोड़ी उस शान्त और पवित्र साधन कुटीर में प्रविष्ट हुई। पूर्वकृत्य समाप्त होने पर होमाग्नि प्रज्वलित की गई और ईश्वरार्थ सर्वस्वत्यागरूप जो व्रत सनातन काल से गुरुपरम्परा से इस भारतवर्ष में प्रचलित है और जिसके कारण भारतवर्ष को ब्रह्मज्ञपद का मान आज भी सारे संसार में प्राप्त है उस त्यागव्रत के अवलम्बन करने के पूर्व उच्चारण करने के लिये जो मन्त्र विहित हैं उन मन्त्रों की पवित्र और गम्भीर ध्वनि से सम्पूर्ण पंचवटी गूंज उठी! उस ध्वनि के सुखस्पर्श से पवित्रसलिला भागीरथी का स्नेहपूर्ण वक्षःस्थल कम्पित होने लगा और आज बहुत दिनों के बाद पुनः एक बार भारतवर्ष के और सारे संसार के कल्याण के लिये एक साधक सर्वस्वत्यागरूप असिधाराव्रत का अवलम्बन कर रहा है—यही जानकर मानो इस आनन्दमयी वार्ता को दिग्दिगन्तर में पहुँचाने के लिये गंगा माता अत्यन्त हर्ष से शब्द करती हुई बड़ी शीघ्रता के साथ अपना मार्ग अनुसरण कर रही थीं!

गुरु जी मन्त्र कहते जाते थे और उनके अलौकिक शिष्य भी अत्यन्त एकाग्रता से उन मन्त्रों का पुनरुच्चार करते हुए अग्नि में आहुति डालते थे। प्रथमतः प्रार्थना * के मन्त्र कहे गये।

"परब्रह्मतत्त्व मुझे प्राप्त हो। परमानन्द लक्षणोपेत वस्तु मुझे प्राप्त हो। अखण्डैकरस मधुमय ब्रह्मवस्तु मुझमें प्रकाशित हो। ब्रह्मविद्या के साथ नित्य वर्तमान रहनेवाले हे परमात्मन्! तेरे देव-मनुष्यादि सब सन्तानों में मैं ही तेरी करुणा के योग्य बालक हूं। हे संसाररूप दुःस्वप्नहारिन् परमेश्वर! मेरे द्वैतप्रतिभासरूप सर्व दुःस्वप्नों का विनाश कर। हे परमात्मन्! मैं अपनी सर्व प्राणवृत्तियों

---

* त्रिसुपर्ण मन्त्र का भावार्थ।

की तुझमें आहुति देकर सर्व इन्द्रियों का निरोध करके त्वदेकचित्त हो गया हूं। हे सर्वप्रेरक देव! ज्ञानप्रतिबंधक सर्व मलिनता मुझमें से बाहर करके असंभावना विपरीत-भावना रहित तत्त्वज्ञान प्राप्त होने योग्य मुझे बना। सूर्य, वायु, सभी नदियों के पवित्र जल, व्रीहियवादि शस्य, सर्व वनस्पति और जगत के अन्य सर्व पदार्थ तेरे आदेश से मेरे अनुकूल होकर तत्वज्ञानप्राप्ति के कार्य में मेरी सहायता करें! हे ब्रह्मन्! तू ही इस जगत में नाना प्रकार के रूपों से प्रकाशित हो रहा है। शरीर और मन शुद्ध होकर तत्त्वज्ञान धारण की योग्यता मुझे प्राप्त होवे—एतदर्थ अग्निरूप तुझमें मैं आहुति दे रहा हूं। अतः प्रसन्न होओ।"

तत्पश्चात् विरजा होम प्रारम्भ हुआ—"मेरे भीतर के पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इन पंचभूतों के अंश शुद्ध होवें। आहुतियों के योग से रजोगुण प्रसूत मलिनता से मुक्त होकर मैं ज्योतिःस्वरूप बनूं-ऐसा होवे!"

"मेरे भीतर के प्राणपंचक, कोषपंचक शुद्ध होवें!"

"मेरे भीतर के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध प्रसूत सर्व विषयसंस्कार शुद्ध होवें! मेरे मन, वाक्य, कार्य, कर्म आदि सभी शुद्ध होवें!"

"हे अग्नि! शरीर में सोये हुए ज्ञानप्रतिबंधहरणकुशल लोहिताक्ष पुरुष! जागृत होओ। हे अभीष्ट पूरणकारिन! ज्ञानप्रतिबन्धक सभी वस्तुओं का नाश करके गुरुमुख से सुने हुए ज्ञान को अन्तःकरण में यथार्थ रीति से धारण करने योग्य मुझे बना। मुझमें जो कुछ है वह सभी शुद्ध हो जावे!"

"चिदाभास ब्रह्मस्वरूप में दारा, पुत्र, धनसंपत्ति, लोकमान्यता, सुंदर शरीर आदि के प्राप्ति की सब वासनाओं को अग्नि में आहुति देता हूं!"

इस तरह अनेक आहुतियां देने के बाद "भूः आदि सर्व लोकप्राप्ति की सभी आशायें मैंने इसी क्षण से त्याग दीं और इसी समय से मैं संसार के समस्त प्राणिमात्र को अभय दान देता हूं!" ऐसा कहकर होम समाप्त किया गया। शिखा-सूत्र का भी यथाविधि होम हुआ और पुरातन काल से प्रचलित परम्परा

के अनुसार गुरू के दिये हुए कौपीन, काषाय वस्त्र और नाम * से विभूषित होकर श्रीरामकृष्ण श्रीमत् परमहंस तोतापुरी के पास उपदेश ग्रहण करने के लिये एकाग्र होकर बैठ गये !

तदनन्तर श्रीमत् तोतापुरी नाना प्रकार की युक्तियों और सिद्धान्त वाक्यों के द्वारा उस दिन श्रीरामकृष्ण को समाधि अवस्था प्राप्त कराने का प्रयत्न करने लगे । श्रीरामकृष्ण कहते थे कि ऐसा मालूम होता था कि उस दिन न्यांगटा ने अपने सर्व साधनलब्ध अनुभव और उपलब्धि का निश्चय मुझे करा देने के लिये मानों कमर ही कस ली थी । वे कहते थे—" मुझे दीक्षा देकर न्यांगटा अनेक सिद्धान्तवाक्यों का उपदेश करने लगा और मन को सर्वथा निर्विकल्प करके आत्मध्यान में निमग्न होने के लिए कहने लगा । परन्तु मेरी स्थिति तो ऐसी थी कि ध्यान करने के लिये बैठने पर अनेक प्रयत्न करने पर भी मन को पूर्णतः निर्विकल्प करके नाम–रूप की सीमा के परे जाना मुझसे बनता ही नहीं था । अन्य सब विषयों से मन को सहज ही परावृत्त कर लेता था, परन्तु इस प्रकार निर्विषय होते ही श्री जगदम्बा की चिर परिचित चिद्घन उज्ज्वल मूर्ति आँखों के सामने खड़ी हो जाती थी और नाम–रूप त्याग का समूल विस्मरण करा देती थी ! ध्यानकरने बैठता था और मन निर्विषय होते ही माता की मूर्ति सामने आ जाती थी । इस प्रकार लगातर तीन दिन बीत गये । तब तो मैं निर्विकल्प समाधि के विषय में प्रायः निराश हो गया और आँखें खोलकर न्यांगटा से कहने लगा, " मन पूर्णतः निर्विकल्प नहीं होता–मैं क्या करूं ? " यह सुनकर न्यांगटा को क्रोध आ गया और मेरा तिरस्कार करते हुए वह बोला, " नहीं होता–इसका क्या मतलब ? " ऐसा कहते हुए इधर उधर देखने पर उसे एक कांच का टुकड़ा मिल गया और उसकी सुई के समान तीक्ष्ण नोक को मेरे कपाल पर दोनों भौंहों के बीच में ज़ोर से गड़ाकर मुझसे बोला, " इस जगह अपना मन एकाग्र कर । " तब फिर एक बार मैं पूरा दृढ़ निश्चय करके ध्यान करने लगा और पूर्ववत् श्री जगदम्बा की मूर्ति आँखों के सामने आते ही ज्ञानरूपी तलवार से मन

---

* श्री तोतापुरी ने ही संन्यास दीक्षा के समय श्रीरामकृष्ण को " श्रीरामकृष्ण " यह नाम दिया ।

में ही उस मूर्ति का खंडन कर डाला। तब तो मन में किसी भी प्रकार का विकल्प शेष नहीं रहा और मन तुरन्त ही नामरूपात्मक राज्य की सीमा को पार करके जल्दी २ ऊपर जाकर समाधिमग्न हो गया!" इस प्रकार श्रीरामकृष्ण को समाधि लग जाने पर बहुत समय तक श्रीमत् तोतापुरी उनके समीप ही बैठे रहे। पीछे धीरे से उस पवित्र कुटीर के बाहर आकर उन्होंने किवाड़ बन्द करके ताला लगा दिया जिससे कोई मनुष्य वहां जाकर उनके शिष्य को कष्ट न दे सके और वे स्वयं पास ही पंचवटी के नीचे अपने आसन पर शान्तिपूर्वक बैठकर प्रतीक्षा करने लगे कि श्रीरामकृष्ण किवाड़ खोलने के लिये कब पुकारते हैं। दिन बीत गया, रात आई। रात भी बीत गई और दूसरा दिन निकल आया। इसी तरह लगातार तीन दिन हो गये तोभी किवाड़ खुलवाने के लिये श्रीरामकृष्ण की पुकार सुनाई नहीं दी! तब तो श्री तोतापुरी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने अद्भुत शिष्य की अवस्था देखने की उत्सुकता से धीरे से किवाड़ खोलकर कुटीर के भीतर गये। वहां उन्होंने देखा कि उनका शिष्य तीन दिनों के पूर्व समाधि लगते समय जैसा बैठा था वैसा ही बैठा हुआ है, देह में प्राणों का बिल्कुल चिन्ह नहीं है, केवल मुखमण्डल शान्त और गम्भीर है और उस पर एक अपूर्व तेज झलक रहा है! बाह्यजगत के सम्बन्ध में अभी तक वह मृतप्राय बना है और उसका चित्त निवात-निष्कम्प-प्रदीप के समान ब्रह्म में लीन है! यह अवस्था देखकर श्री तोतापुरी चकित हो गये और अपने आप कहने लगे, "क्या यह बात सचमुच सम्भव है? जिसे सिद्ध करने के लिये मुझको चालीस वर्ष तक सतत परिश्रम करना पड़ा क्या उसे इस महापुरुष ने तीन ही दिनों में सिद्ध कर डाला?" ऐसी शंका उन्हें हुई और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के शरीर के सभी लक्षणों की-हृदय की स्पन्दन क्रिया चल रही है या नहीं, नाक द्वारा श्वासोच्छ्वास हो रहा है या नहीं-बारीकी के साथ जाँच की। परन्तु हृदय की क्रिया बन्द थी, श्वासोच्छ्वास भी बन्द था! तब उन्होंने श्रीरामकृष्ण के उस काष्ठवत् शरीर को चुटकी लेकर देखा पर उसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ। तब तो तोतापुरी के आश्चर्य और आनन्द की सीमा नहीं रही। "यह कैसी विचित्र बात है! यह तो सचमुच समाधि ही है!" ये शब्द उस आश्चर्य और आनन्द के आवेश में उनके मुँह से निकल पड़े।

तत्पश्चात् अपने उस अलौकिक शिष्य को समाधि-अवस्था से उठाने के लिये श्री तोतापुरी ने कोई क्रिया आरम्भ की और थोड़ी ही देर में "हरिः ॐ" मंत्र की गम्भीर ध्वनि से वह पवित्र पुण्यस्थान पंचवटी गूंज उठी।

अपने शिष्य के असामान्य होने की जानकारी श्री तोतापुरी को प्रथम भेंट के समय ही हो गई थी और अब तो उन्हें उसकी अलौकिकता का प्रत्यक्ष निश्चय हो गया। अतः उन्होंने अपने शिष्य को "परमहंस" की पदवी दे दी। अपने शिष्य पर उन्हें बड़ा प्रेम हो गया। इतना ही नहीं उसके प्रति उनके मन में बड़ा आदरभाव भी उत्पन्न हो गया और उसकी संगति का लाभ हो सके तो अच्छा होगा यह भाव उनके मन में आने लगा। इस असाधारण शिष्य के अद्भुत आकर्षण के कारण उनके जाने का दिन भी अधिकाधिक दूर होने लगा और उनका जो एक स्थान में तीन दिन की अवधि से अधिक न रहने का नियम था वह अवधि भी समाप्त हो गई तथापि वहां से हटने का विचार भी उनके मन में नहीं आता था! सप्ताह बीत गया, पक्ष भी बीत गया, एक महीना हो गया, छः मास बीत गये तथापि श्रीरामकृष्ण की संगति के दिव्य आनन्द को छोड़कर अन्यत्र जाने का उनका मन नहीं होता था।

रोज़ प्रातः सायं उस पुण्यस्थल में पंचवटी के नीचे बैठे हुए उन दोनों महापुरुषों में जो निजानन्द की वार्ता होती रही होगी और उस समय जो आनन्द का स्रोत उमड़ता रहा होगा उसकी कुछ भी कल्पना करना हम सरीखे सामान्य मनुष्यों के लिये असम्भव है। अब श्रीरामकृष्ण को वेदान्त के सिवाय और कोई धुन नहीं थी और श्री तोतापुरी को भी अपने शिष्य को वेदान्त शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों को अपने निज के अनुभव की अधिकारयुक्त वाणी द्वारा समझा देने के सिवाय दूसरा कोई आनन्द का विषय नहीं था। कई बार तो उन दोनों को अपने आनन्द की लहर में दिन रात और खान पान तक का ध्यान नहीं रहता था!

ऊपर बता ही चुके हैं कि श्री तोतापुरी वेदान्तोक्त कर्मफलदाता ईश्वर के सिवाय किसी और देवी-देवता को नहीं मानते थे और किसी को देवी-देवता पर विश्वास करते देख उसे वे अज्ञान और कुसंस्कार का परिणाम समझा करते थे।

बिल्कुल छुटपन से ही सब प्रकार के मायाजाल से दूर रहकर अपने गुरू के चरणों मे वास करने का महद्भाग्य इन्हें प्राप्त हो गया था, इसी कारण वे आत्म-ज्ञानलाभ के कार्य में अपने स्वयं के प्रयत्नों को छोड़कर अन्य किसी बात को महत्त्व नहीं देते थे। श्रीमदाचार्य ने अपने विवेक चूड़ामणि के आरम्भ में ही कहा है कि "इस संसार में मनुष्यत्व, ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा और सद्गुरू का आश्रय इन तीनों वस्तुओं का प्राप्त होना परम दुर्लभ है-इसके लिये ईश्वर की ही कृपा चाहिये।" इन तीनों वस्तुओं का लाभ श्री तोतापुरी को बचपन में ही हो गया था। तभी से अपने ध्येय की ओर दृष्टि रखकर लगातार चालीस वर्ष परिश्रम करते हुए उन्होंने उसकी सिद्धि प्राप्त की। उन्हें अपने मन के साथ भी बहुत सा झगड़ा करना नहीं पड़ा होगा क्योंकि बचपन में ही उन्हें सद्गुरू का आश्रय प्राप्त हो जाने और गुरू के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा होने के कारण अक्षरशः सद्गुरू की आज्ञा के अनुसार ही उनका आचरण सहज ही हुआ करता था। बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय में एक कहावत प्रचलित है:—

गुरु कृष्ण वैष्णव तिनेर दया हइल।
एकेर दयाविने जीव छारे खारे गेल॥

अर्थात् गुरु, भगवान और सन्त तीनों की दया चाहिये; इनमें से किसी एक की भी दया न होने पर जीव के कल्याण का नाश हो जाता है। एक की दया के बिना अर्थात् मन की दया के बिना जीव का सत्यानाश हो जाय, ऐसे दुष्ट मन के पंजे में श्री तोतापुरी कभी भी नहीं फँसे होंगे। ईश्वर पर भरोसा और विश्वास रखकर गुरू की आज्ञा के अनुसार अपने ध्येय के मार्ग में चलते हुए उन्होंने एक बार भी पीछे की ओर मुड़कर संसार के झगड़े और झन्झटों की ओर दृष्टि नहीं डाली। स्वभावतः वे पूर्णरूप से उद्योग, प्रयत्न और आत्मविश्वास पर अवलंबित थे। अपने मार्ग में चलते २ यदि बीच में ही मन किसी अड़ियल टट्टू के समान अड़ जावे तो यह सारा प्रयत्न और आत्मविश्वास झंझावात में तृणसमूह के समान कहीं का कहीं चला जाता है और उसकी जगह अविश्वास आ घेरता है और उस शूरवीर की दशा किसी क्षुद्र असहाय कीट की अपेक्षा अधिक करुणाजनक हो जाती है-इस बात का अनुभव श्री तोतापुरी को नहीं था। ईश्वर की कृपा से बाह्यजगत के अनेक पदार्थों की अनुकूलता प्राप्त न होने

पर जीव के समस्त प्रयत्नों और उद्योगों का कुछ भी उपयोग नहीं होता तथा उसकी आशा के अनुसार उसे फलप्राप्ति नहीं होती–इस बात का भी अनुभव तोतापुरी को नहीं हुआ था। इसी कारण वे यह नहीं समझ सकते थे कि आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये साधक को देवी–देवता की सहायता मांगनी चाहिये। वे कहा करते थे कि भक्तिमार्ग दीन दुर्बल तथा असमर्थ लोगों का मार्ग है। श्रीमत् तोतापुरी के ध्यान में यह बात नहीं आती थी कि ईश्वरभक्ति और प्रेम में तन्मय होकर भक्तसाधक संसार के सभी विषयों को ही नहीं वरन् आत्मतृप्ति को भूलकर अपनी भक्ति के बल से ईश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकता है और भक्ति की अत्यन्त उच्च अवस्था में भक्त शुद्ध अद्वैत ज्ञान का भी अधिकारी हो जाता है और इसी कारण उसके जप, कीर्तन भजनादि बहुत उपयोगी होते हैं; ये सब पागलपन के या दुर्बलता के लक्षण नहीं हैं। यही कारण है कि वे (तोतापुरी) कभी कभी भक्त की भावतन्मयता की दिल्लगी उड़ाया करते थे। पर इसका यह मतलब नहीं है कि श्री तोतापुरी नास्तिक थे या उन्हें ईश्वरानुराग नहीं था। वे स्वयं शमदमादि संपत्तिवान् शान्त प्रकृति के पुरुष थे और भक्ति के शान्तभाव के साधक थे और दूसरों में भी उस भाव की ईश्वरभक्ति को वे समझ सकते थे। परन्तु ईश्वर को अपना सखा, पुत्र, स्वामी आदि मानकर उन भावों से भक्ति करने से साधक की उन्नति शीघ्रता से हो सकती है इस विषय की ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया था। अतएव ऐसे भक्तों का ईश्वर के प्रति विशिष्ट सम्बन्ध युक्त प्रेम, उनकी प्रार्थनाएँ, ईश्वर विरह में उनका बेहोश होना, उनकी व्याकुलता, अभिमान, हठ, भाव की प्रबलता में उनके हास्य, नृत्य, क्रन्दन आदि को वे पागलपन के लक्षण समझते थे। उन्हें इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि उपर्युक्त लक्षणों के संयोग से साधक की उन्नति का वेग बढ़ जाता है और उसे अपने ध्येय की प्राप्ति अति शीघ्र हो जाती है। इसी कारण उनमें और श्रीरामकृष्ण में अनेक बार ब्रह्मशक्ति जगदम्बा की मनोभाव युक्त भक्ति,-पूजा अर्चा और अन्य भक्ति सम्बन्धी विषयों के बारे में वादविवाद छिड़ जाया करता था।

बचपन से ही श्रीरामकृष्ण नित्य प्रातः सायं हाथों से ताली बजाते हुए और कई बार भावावेश में नाचते २ कुछ समय तक " हरिबोल हरिबोल ", " हरिगुरु, गुरुहरि ", " प्राण हे गोविन्द मम जीवन ", " मनकृष्ण, प्राणकृष्ण,

ज्ञानकृष्ण, ध्यानकृष्ण, बोधकृष्ण, बुद्धिकृष्ण ", " तू ही जगत, जगत तुझमें " " मैं यंत्र, तू यंत्री "—इत्यादि भजन ज़ोर २ से किया करते थे। वेदान्त ज्ञान-द्वारा अद्वैत भाव से निर्विकल्प समाधि का लाभ होने पर भी उन्होंने अपना यह नित्यक्रम कभी भी नहीं छोड़ा। एक दिन पंचवटी के नीचे श्री तोतापुरी के साथ नाना प्रकार की धार्मिक बातें करते २ संध्या हो गई। तुरन्त ही सभी बातें एकदम बन्द करके वे ऊपर लिखे अनुसार भजन करने लगे। यह दृश्य देखकर श्री तोतापुरी को बड़ा आश्चर्य हुआ और जो पुरुष वेदान्त मार्ग का इतना उत्तम अधिकारी है कि केवल तीन ही दिनों में निर्विकल्प समाधि उसे प्राप्त हो गई वही पुरुष एक अत्यन्त हीन अधिकारी के समान भजन कर रहा है–इस समस्या को वे हल नहीं कर सके। तब वे दिल्लगी करने के इरादे से श्रीरामकृष्ण की ओर देखकर बोले, " क्यों ? रोटी ठोंकते हो ? " श्रीरामकृष्ण हँसते हँसते बोले, " ज़रा चुप बैठियेगा ! मैं तो ईश्वर का नाम स्मरण कर रहा हूं और आप कहते हैं– ' क्यों रोटी ठोंकते हो ? ' " श्रीरामकृष्ण के इस सरल वाक्य को सुनकर श्री तोतापुरी को भी आनन्द आया और वे उनके ऐसा करने में कोई अर्थ अवश्य होगा ऐसा समझकर चुप हो गये और कुछ न बोले।

इसी तरह और भी एक दिन संध्याकाल के बाद श्रीरामकृष्ण श्री तोतापुरी की धूनी के पास ही बैठे थे ! ईश्वरी कथा प्रसंग में दोनों के मन ऐसी उच्च स्थिति को प्राप्त हो गये थे कि वे अद्वैत अनुभव में प्रायः तन्मय हो गये थे। उनके सामने की धूनी में अग्निनारायण की आत्मा भी मानों इनकी आत्मा के साथ एकता का अनुभव करते हुए आनन्द के मारे अपनी सम्पूर्ण शतजिव्हाओं को बाहर निकालकर खिलखिलाकर हँस रही थी ! उन दोनों को ही जगत की प्रायः विस्मृति हो गई थी। इसी समय बगीचे के नौकरों में से एक मनुष्य अपनी चिलम भरकर आग लेने के लिये वहां आया और धूनी से एक लकड़ी बाहर खींच-कर उसमें से अंगार निकालने लगा। दोनों ही ब्रह्मानन्द में ऐसे निमग्न थे कि इस मनुष्य का आना और लकड़ी का खींचना इन दोनों को मालूम नहीं पड़ा। इतने ही में एकाएक तोतापुरी की नज़र उस पर पड़ी और अपनी पवित्र अग्नि को इस मनुष्य ने छू दिया यह देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे उसे गाली देते हुए अपना चिमटा लेकर उसे मारने का भी भय दिखाने लगे।

यह सब हाल देखकर श्रीरामकृष्ण उस तन्मय स्थिति में अर्धबाह्य-अवस्था में जोर २ से हँसने लगे और बारम्बार "वाह २! वाह २! शाबास २!" कहने लगे। श्रीरामकृष्ण को ऐसा कहते देख उन्हें बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ और वे बोले, "तू ऐसा क्यों कह रहा है? देख भला! इस मनुष्य ने कितना बड़ा अपराध किया है?" श्रीरामकृष्ण ने हँसते २ उत्तर दिया—"हां! उसका अपराध तो ज़रूर है पर मुझको उसकी अपेक्षा आपके ब्रह्मज्ञान की ही अधिक दिल्लगी मालूम पड़ती है। अभी ही आप कहते थे न कि एक ब्रह्म के सिवाय इस जगत में और दूसरा कुछ भी सत्य नहीं है, संसार की सभी वस्तु और व्यक्ति उसी के प्रकाश हैं—और तुरन्त दूसरे ही क्षण में आप यह सब भूलकर उस मनुष्य को मारने के लिये तैयार हो गये? इसीलिये हँसता हूं कि महामाया का प्रभाव कितना प्रबल है!" श्रीरामकृष्ण के ये वचन सुनकर तोतापुरी कुछ देर तक गम्भीर होकर बैठे रहे। फिर वे श्रीरामकृष्ण से बोले, "तूने ठीक कहा। मैं क्रोध के आवेश में सचमुच ही सब बातें भूल गया था। क्रोध बड़ा दुष्ट है, आज से मैं कभी भी क्रोध नहीं करूंगा।" सचमुच ही तोतापुरी उस दिन के बाद कभी भी गुस्सा होते हुए नहीं देखे गये।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे-"पंचभूतों के चपेटों में पड़कर ब्रह्म रोया करता है। आँखें मूंदकर आप कितना ही कहिये—'मुझे कांटा नहीं गड़ा, मेरा पैर दर्द नहीं करता'-पर कांटा चुभते ही वेदना से तुरन्त व्याकुल होना पड़ता है। उसी तरह मन को कितना भी सिखाइये कि तेरा जन्म नहीं होता, मरण नहीं होता, तुझे न पाप होता न पुण्य, तेरे लिये न शोक है न दुःख, न क्षुधा है न तृष्णा; तू जन्म-जरा-रहित, निर्विकार, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है—पर शरीर जरा सा भी अस्वस्थ हुआ, या मन के सामने थोड़ा भी संसार का रूपरसादि विषय आ गया, या काम कंचन के ऊपरी दिखने वाले सुख में भूलकर हाथ से कोई दुष्कर्म हो पड़ा कि तुरन्त ही मन में मोह, दुःख, यातना की तरंगें उमड़ पड़ती हैं और मनुष्य सभी आचार-विचारों को भूलकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। इसी कारण यदि ईश्वर की कृपा न हुई, महामाया ने यदि गले की फांसी की डोरी न खोली, तो किसी को भी आत्मज्ञान और आनन्द की प्राप्ति हो नहीं सकती यह निश्चय जानिये—

" सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये । "—उस जगदम्बा ने कृपा करके यदि मार्ग खुला नहीं किया तो कुछ भी सिद्ध होने की आशा नहीं है ।

" राम, सीता और लक्ष्मण वन में से जा रहे थे । वन का मार्ग सकरा था । एक बार में सिर्फ़ एक ही मनुष्य चलने लायक चौड़ा था । धनुष बाण हाथ में लेकर रामचन्द्र सब से आगे २ चल रहे थे, उनके पीछे २ सीता जी चल रही थीं और उनके पीछे लक्ष्मण जी धनुष बाण लेकर जा रहे थे । लक्ष्मण जी की श्रीरामचन्द्र जी पर अत्यन्त भक्ति और प्रीति थी । वे चाहते थे कि उन्हें श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन हर क्षण होता रहे । पर वे करें क्या ? उनके और रामचन्द्र जी के बीच में सीता जी चल रही थीं । अतः रामचन्द्र जी का दर्शन न होने के कारण लक्ष्मण जी को सतत व्याकुलता रहा करती थी । बुद्धिमती सीता के ध्यान में यह बात आई और ज्योंही उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई त्योंही वे रास्ता चलते २ कुछ हट गईं और बोली, " अच्छा ! अब दर्शन कर लो । " तब कहीं लक्ष्मण जी नेत्र भरकर अपनी इष्ट मूर्ति के दर्शन कर सके । उसी तरह जीव और ईश्वर के बीच में भी मायारूपी सीता रहा करती है । उसने जीव रूपी लक्ष्मण पर कृपा करके यदि राह नहीं छोड़ दिया और उसका पाश नहीं तोड़ दिया तो जीव को रामरूपी ईश्वर का दर्शन नहीं होगा यह निश्चय जानिये । उसकी कृपा हुई कि जीवरूपी लक्ष्मण को रामरूपी ईश्वर के दर्शन होने में कुछ भी देरी नहीं लगती और यदि उसकी कृपा नहीं हुई तो फिर हज़ार विचार कीजिये उससे कुछ नहीं होगा । अस्तु–

तोतापुरी पर श्री जगदम्बा की कृपा जन्म से ही थी । सत्संस्कार, सरल मन, योगी महापुरुष का आश्रय, बलिष्ठ और निरोग शरीर उन्हें बालपन से ही प्राप्त था । महामाया ने उन्हें अपना उग्र रूप कभी नहीं दिखाया था । इसी कारण श्री तोतापुरी को उद्योग और सतत परिश्रम द्वारा निर्विकल्प समाधि अवस्था प्राप्त करना बिल्कुल सहज बात मालूम पड़ती थी । उन्हें यह कैसे जान पड़े कि श्री जगदम्बा की कृपा रहने के कारण ही उसी ने परमार्थ मार्ग की सभी अड़चनों को स्वयं दूर करके उनका मार्ग सुगम कर रखा था । पर अब इतने दिनों के बाद श्री जगदम्बा के मन में आया कि इस बात का अनुभव

उन्हें दिया जावे। इसी कारण अब इतने दिनों में उनके मन के भ्रम के दूर होने का समय आया।

श्री तोतापुरी की शारीरिक प्रकृति अत्यन्त निरोगी थी। उन्हें अजीर्ण आदि तरह २ के रोगों का कुछ भी अनुभव नहीं था। वे जो खाते थे सब हजम हो जाता था। जहां सोते थे वहीं उन्हें नींद आ जाती थी। उनका मन सदैव शान्ति और आनन्द से पूर्ण रहा करता था। चिन्ता या उदासीनता उन्हें कभी नहीं हुई। पर बंगाल के पानी और सर्द हवा ने उनके शरीर पर अपना असर किया। श्रीरामकृष्ण के अद्भुत आकर्षण के कारण उन्होंने दक्षिणेश्वर में कुछ ही महीने बिताये कि उनके फौलाद के समान शरीर में भी रोग का प्रवेश हो गया। उन्हें रक्त आमांश हो गया, रातदिन पेट में मरोड़ होकर दर्द होने लगा और उनका धीर गम्भीर और स्थिर मन भी ब्रह्म विचार और समाधि-अवस्था से हटकर शरीर की ओर आकृष्ट होने लगा। पंचभूतों के चपेटे में ब्रह्म के पड़ जाने पर अब सर्वेश्वरी श्री जगदम्बा के सिवाय दूसरा रक्षक कौन हो सकता है? रोग होने के पूर्व ही उन्हें ऐसा मालूम होने लगा था कि इस प्रान्त में मेरी प्रकृति स्वस्थ नहीं रहेगी, अतः यहां अधिक रहना ठीक नहीं है। परन्तु श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति के सुख का लोभ उनसे नहीं छूटता था और अन्त में वे बीमार हो ही गये। रोग को बढ़ते देखकर बीच २ में उन्हें वहां से अन्यत्र चले जाने की इच्छा होती थी। "आज श्रीरामकृष्ण की अनुमति लेंगे" ऐसा वे विचार करते थे, परन्तु जब श्रीरामकृष्ण उनके समीप आकर बैठते थे और भगवत्कथा प्रसंग छिड़ जाता था, तब वे अपना विचार भूल जाते थे और उनके जाने का दिन दूर होता जाता था। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि श्रीरामकृष्ण के उनके पास आते ही उनसे अनुमति मांगने की बात उनके बिल्कुल ओंठ तक आ जाती थी पर इतने ही में वे सोचने लगते थे कि "ऊँह, जल्दी क्या है? आज रहकर कल चला जाऊंगा।" पर ऐसा होते २ रोग क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। श्री तोतापुरी के स्वास्थ्य को दिनोंदिन अधिक बिगड़ते देखकर श्रीरामकृष्ण ने मथुरबाबू से कहकर औषधि की व्यवस्था कराई और उनकी सेवाशुश्रूषा वे स्वयं करने लगे। पेट के दर्द से उन्हें अधिक कष्ट होने लगा, तथापि अपने मन को समाधिमग्न करके शरीर के सभी दुःखों को भुला देने

लायक शक्ति उनमें अभी भी शेष थी। आज रात्रि के समय तोतापुरी के पेट में बड़ा दर्द हुआ। वे सोने का प्रयत्न करते थे पर तुरन्त ही पेट में मरोड़ होने से वे उठ बैठते थे, पर बैठे रहने पर भी उन्हें चैन कहां थी? फिर लेटते थे, फिर बैठते थे, ऐसा लगातार हो रहा था। तब उन्होंने सोचा कि बस अब समाधि लगाकर बैठ जाना चाहिये; फिर इस शरीर का जो कुछ होना होगा सो हो जावेगा। पर आज तो उनसे समाधि भी नहीं लगती थी। सारा मन उस पेट की वेदना की ओर ही लगा था। समाधि लगाने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ हुआ। तब तो उन्हें अपने शरीर पर क्रोध आया। वे स्वयं अपने आप कहने लगे–"आज इस शरीर के भोग के कारण मेरा मन भी मेरे काबू में नहीं है! यह कैसी बात है? मैं शरीर तो हूं नहीं! तब यह बात कैसी है? अब शरीर का ही अन्त कर डालता हूं; फिर सब ठीक हो जावेगा; व्यर्थ इसकी संगति में अपने को क्यों कष्ट दूं? अभी समय भी ठीक है। अभी ही इस शरीर को गंगा जी में विसर्जन करके सभी भोगों और दुःखों का अन्त कर डालता हूं!" ऐसा सोचकर वे पुनः एक बार बलपूर्वक प्रयत्न करके अपने मन को ब्रह्म चिन्तन में स्थिर करके धीरे २ सरकते २ गंगाजी के किनारे पर पहुँचे और पानी में उतरकर धीरे २ आगे जाने लगे। पर बड़े आश्चर्य की बात हुई। इतनी बड़ी गंगा नदी मानो आज सचमुच सूख गई हो ऐसा मालूम पड़ा। उस प्रवाह में एक मनुष्य के डूबने लायक भी पानी नहीं था। यह क्या हुआ और कैसे हुआ? श्री तोतापुरी चलते २ लगभग दूसरे किनारे तक पहुँच गये तोभी गंगा जी में डूबने लायक पानी कहीं पर नहीं मिला। क्रमशः उस पार के गृह, वृक्ष आदि रात्रि के अन्धकार में दिखने लगे। तब आश्चर्यचकित होकर तोतापुरी अपने आप कहने लगे—"यह कैसी दैवी माया है! मेरे डूब मरने लायक भी पानी आज इस नदी में नहीं है! ईश्वर की यह कैसी अपूर्व लीला है!" इतने ही में भीतर से किसी ने उनकी बुद्धि पर के आवरण को दूर हटा दिया और उनके अन्तःकरण में एकदम प्रकाश हो गया कि—

"यह सब उस जगदम्बा, उस विश्वजननी, अचिन्त्य शक्तिरूपिणी माया का खेल है! यह सब उसी की लीला है! जल में, स्थल में, काष्ठ में, पाषाण

में–सर्वत्र वही माया, वही जगदम्बा ! वही शरीर, मन भी वही, भोग वही और यातना भी वहीं है। वही ज्ञान, अज्ञान भी वही, जन्म वही और मृत्यु भी वही है ! दृश्य और अदृश्य, ज्ञेय और अज्ञेय सब कुछ वही है। मन और बुद्धि की सीमा के भीतर वही है और उस सीमा के परे भी वही है। अघटन-घटनपटीयसी वही है, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ भी वही है ! उसकी इच्छा न रहने पर किसी को भी उसके माया जाल से छूटते नहीं बनता ! उसकी इच्छा न हो तो मरने की शक्ति भी किसी में नहीं है ! इतने दिनों तक ब्रह्म नाम से पहिचानकर जिसका मैं चिन्तन करता था वही यह जगदम्बा है ! शिव और शिवशक्ति, ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति एक ही है।"

रात्रि का समय ! अमावस्या का सा अन्धकार ! सर्व जगत शान्त। कहीं कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती थी। श्री तोतापुरी उस गंगा जी के पानी में–डूब मरने लायक भी पानी जहां नहीं था ऐसी गंगा जी के पानी में–श्री जगदम्बा की अचिन्त्य लीला का चिन्तन करते हुए खड़े थे ! उन्हें हर तरफ जगदम्बा ही दिखाई देने लगी और "जय जगदम्बे" "जय जगदम्बे" ऐसा जयघोष करते हुए वे अपने आपको उसके चरणों में सब प्रकार से समर्पण करके जैसे गंगा में आगे सरकते २ गये थे उसी प्रकार पीछे लौटकर धीरे २ जहां से गये थे वहीं पर पुनः पहुँचे और किनारे पर आकर वहीं से पंचवटी के नीचे अपनी धूनी के समीप आ गये। उन्हें अब शारीरिक कष्ट का स्मरण तक नहीं था और मन को भी एक प्रकार की अपूर्व शान्ति प्राप्त हो गई थी। बाक़ी बची हुई रात्रि उन्होंने श्री जगदम्बा के नाम स्मरण और ध्यान करने में बिताई।

प्रभात होते ही नित्य के अनुसार, श्रीरामकृष्ण उनसे मिलने आये तो देखते हैं कि वे बिल्कुल बदल गये हैं ! मुखमण्डल आनन्द से प्रफुल्ल है, मुख पर हास्य की छटा विराज रही है और शरीर तेजस्वी हो गया है–मानो वे कभी बीमार ही न रहे हों ! श्रीरामकृष्ण को उन्होंने इशारे से अपने पास आकर बैठने के लिये कहा और रात्रि का सब वृत्तान्त धीरे २ उनको सुना दिया। वे बोले–"यह रोग ही मेरा बंधु हुआ और इसी ने कल रात्रि को मुझे श्री जगदम्बा का दर्शन करवाया। इतने दिनों तक मैं कितना अज्ञानी था ! कुछ भी हो; तू अब अपनी

माता से पूछकर मुझे यहां से जाने की अनुमति दे। अब कहीं यह मेरे ध्यान में आया कि यह सब उसी का खेल है! मेरी आँखें खोलने के लिये ही उसी ने मुझे इतने दिनों तक यहां रहने का मोह उत्पन्न किया। नहीं तो मैं यहां से कब का ही चला गया होता। पर उसकी वैसी इच्छा नहीं थी! अब मेरे यहां से जाने में कोई हर्ज नहीं है। इसलिये मैं तुमसे कहता हूं कि मुझे अब उसकी अनुमति प्राप्त करा दे। यह सुनकर श्रीरामकृष्ण हँसते २ बोले, "क्यों? हुआ अब निश्चय? मेरी माता को आप इतने दिनों तक मानते ही नहीं थे और शक्ति मिथ्या है, झूठ है कहकर मुझसे विवाद करते थे। मुझे उसने कब से समझा रखा है कि जैसे अग्नि और उसकी दाहक शक्ति एक है, उसी तरह ब्रह्म और ब्रह्म शक्ति बिल्कुल एक ही है। अब आप स्वयं अनुभव कर चुके यह ठीक हुआ!"

प्रभात हो गया। नौबतखाने में नौबत बजने लगी। शहनाई की आवाज़ होने लगी। मन्दिर में जगन्माता उठ गई होंगी ऐसा सोचकर, शिव और राम के सदृश गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में बंधे हुए ये दोनों महापुरुष उठे और श्री जगदम्बा के मन्दिर में जाकर उन्होंने उसके चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम किया। दोनों को ही निश्चय रूप से यह मालूम होने लगा कि अब श्री जगदम्बा ने तोतापुरी को दक्षिणेश्वर से जाने की अनुमति सहर्ष दे दी है। इसके बाद एक दो दिनों में ही श्री तोतापुरी श्रीरामकृष्ण से बिदा लेकर दक्षिणेश्वर से पश्चिम की ओर कहीं चले गये। तदुपरान्त उनके सम्बन्ध की कोई वार्ता मालूम नहीं हुई।

श्री तोतापुरी के सम्बन्ध में और एक बात का उल्लेख कर देने से श्रीरामकृष्ण के मुख से सुने हुए उनके सम्बन्ध का प्रायः सभी वृत्तान्त समाप्त हो जावेगा। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि श्री तोतापुरी कीमिया की विद्या जानते थे और उन्होंने उसके द्वारा कई बार तांबे आदि धातुओं का सोना बनाया था। यह विद्या उन्हें गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। तोतापुरी कहते थे—"इस विद्या का उपयोग अपने स्वार्थ साधने या भोग विलास प्राप्त करने के लिये कभी भी नहीं करना चाहिये ऐसा कड़ा प्रतिबन्ध है। ऐसा करने से यह विद्या नष्ट होकर गुरू का भी अकल्याण होता है। तथापि मठ में

अनेक लोग रहते हैं उनका योगक्षेम चलाने के लिये या उनके तीर्थाटन के ख़र्च के लिये इस विद्या के उपयोग करने की स्वतन्त्रता दी गई है।" अस्तु—

इस तरह तीन दिनों के बदले पूरे ग्यारह मास दक्षिणेश्वर में बिताकर और श्रीरामकृष्ण से भी कुछ बातें सीखकर श्री तोतापुरी परमहंस वहां से चले गये (सन् १८६५-६६)। तदनन्तर श्रीरामकृष्ण ने अपने मन में यह निश्चय किया कि अब इसके आगे निर्विकल्प अद्वैत भाव में ही रहना चाहिये। अब मैं, तू, जगत आदि सर्व कल्पना छोड़कर श्रीभगवान् के अद्वय, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप में ही एक होकर रहना चाहिये। उनके मन में कोई विचार आ जाने पर उसे अधूरा करके छोड़ना वे जानते ही नहीं थे। अब भी वही बात हुई। वे निरन्तर समाधि-अवस्था में ही रहने लगे। अन्य सब विषयों की बात तो जाने दीजिये, स्वयं अपने शरीर का भी ज्ञान उन्हें नहीं रहता था। खाने, सोने, शौचादि नित्य व्यवहार के कार्य करने का विचार भी उनके मन में उदय नहीं होता था। बोलना चालना बिल्कुल बन्द हो गया। उस अवस्था में कहा "मैं और मेरा" और "तू और तेरा!" द्वैत भी नहीं और एक भी नहीं! क्योंकि जहां दो की कल्पना ही नहीं है वहां एक की भी कल्पना कैसे हो? उस अवस्था में मन की सभी वृत्तियाँ शान्त और स्थिर रहती हैं। केवल—

किमपि सतत बोधं केवलानन्दरूपं
निरुपममतिवेलं प्रख्यमाख्याविहीनम्।
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ॥
प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावम्। इत्यादि०

—विवेक चूड़ामणि।

उस अवस्था में केवल आनन्द ही आनन्द रहता है। वहां न दिशा है, न देश है, न आलम्बन है, न नाम है, न रूप है। केवल अशरीरी आत्मा अपनी अनिर्वचनीय आनन्दमयी अवस्था में मनबुद्धिगोचर समस्त भावों के परे एक प्रकार

की भावातीत अवस्था में स्थिर हो गई रहती है। शास्त्रों में इस अवस्था को "आत्मा से आत्मा का रमण" कहा है। अब श्रीरामकृष्ण इस प्रकार की अनिर्वचनीय अवस्था में ही सदैव रहने लगे। अब इस अवस्था में स्थिर रहने के लिये उनके मार्ग में कुछ भी बाधा नहीं थी। सांसारिक सभी वस्तु, व्यक्ति, आशा, इच्छा आदि के साथ इन्होंने अपना सम्बन्ध बहुत पहिले ही तोड़ डाला था; क्योंकि श्री जगदम्बा के दर्शन के लिये रातदिन व्याकुल रहते समय ही उन्होंने इन सब विषयों को उनके पादपद्मों में अर्पण कर दिया था। उस समय वे कहा करते थे—"माता! तेरा यह ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, यश-अपयश सब अपना तू ही ले जा; मुझे इसमें से कुछ भी नहीं चाहिये; मुझे तू केवल अपने पादपद्मों में शुद्ध भक्ति मात्र दे।" इस प्रकार इन सब का उन्होंने उसी समय स्थायी रूप से त्याग कर दिया था.। इसी कारण अब उनके मन के प्रतिबन्ध के लिये कोई भी विषय बाक़ी नहीं बचा। केवल एक श्री जगदम्बा की मूर्ति ही बची थी। उसे भी उन्होंने ज्ञान रूपी तलवार द्वारा अपने मार्ग से अलग हटा दी थी। तब फिर और क्या बाक़ी रहा? अब तो रातदिन उस अनिर्वचनीय आनन्दमय अवस्था के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं बचा।

इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण लगातार छः महीने रहे! वे कहते थे, "जिस स्थिति में पहुँच जाने पर, साधारण साधक वहां से फिर लौट नहीं सकता, इक्कीस दिनों में ही उसका शरीर पके हुए पत्ते के समान गिर पड़ता है, उस स्थिति में मैं माता की कृपा से छः महीने तक रहा! दिन कब निकला, रात कब हुई, यह भी नहीं जान पड़ता था। मरे हुए मनुष्य के नाक-मुँह आदि में जैसे मक्खियां चली जाया करती हैं वैसी चली जावें तोभी कुछ मालूम नहीं हो। सिर के केश की जटा बन गई। पहने हुए कपड़े में ही मल मूत्र हो जावे पर जान न पड़े। ऐसी अवस्था में क्या शरीर का टिकना सम्भव है? वह तो कब का नष्ट हो गया होता; परन्तु लगभग उसी समय दक्षिणेश्वर में एक साधु आये हुए थे। देखते ही उन्होंने मेरी अवस्था पहिचान ली और उनके मन में आया कि इस देह के द्वारा श्री जगदम्बा के अनेक काम अभी होने के लिये बाक़ी हैं। अतः यदि इसकी रक्षा हम कर सकें तो अनेक लोगों का कल्याण होगा। उनके पास रूल के समान एक लकड़ी थी। उस

लकड़ी से मार २ कर मुझे होश में लाने का प्रयत्न वे किया करते थे और जब मैं कुछ थोड़ा सा भी होश में आता सा दिखाई देता था तब तुरन्त ही वे और हृदय एक दो कौर मेरे गले में डाल देते थे ! उसमें से कुछ अंश किसी दिन गले के नीचे उतर जाता था और किसी दिन नहीं उतरता था। इसी तरह छः महीने तक चला ! तत्पश्चात् कुछ दिनों में जगदम्बा का आदेश हुआ कि "भावमुखी हो, लोक-कल्याणार्थ भावमुखी बन।" उसके बाद में रक्त-आमांश से बीमार पड़ा। पेट के दर्द से असह्य वेदना होती थी। पेट में बहुत मरोड़ हो, बारम्बार शौच के लिये जाना पड़े, ऐसी बीमारी में छः महीने बीतने के बाद कहीं शरीर की सुध आई और लोगों के समान देह की स्मृति हुई; नहीं तो तब तक बीच २ में मन अपने आप स्वतन्त्रता पूर्वक दौड़ लगाकर देखते ही देखते निर्विकल्प अवस्था में पहुंचकर उसी में मग्न हो जाता था।

और एक दिन अपनी अद्वैत अवस्था के सम्बन्ध में बोलते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा-"कैसी अवस्था हो गई थी ! कितने ही दिन हरगौरी-भाव में बिताये, कितने ही राधाकृष्ण-भाव में और कितने ही दिन सीताराम-भाव में ! राधाभाव के समय लगातार श्रीकृष्ण का ध्यान और सीताभाव के समय राम का ध्यान बना रहता था।

तथापि सगुण से-लीला से-ही सब कुछ पूर्ण नहीं हो जाता। इन सब भावावस्थाओं के बाद माता से मैं बोला-" पर हे माता ! इन सब में विच्छेद है; जहां विच्छेद न हो ऐसी अवस्था मेरी बना दे।"—तब तो अखण्ड सच्चिदानन्द अवस्था प्राप्त हुई। मन अखण्ड में लीन रहता था। इस तरह कितने ही दिन बीत गये। मन में से सारा भक्तिभाव प्रायः लुप्त हो गया। भक्तों की स्मृति भी चली सी गई। सिर कैसा भारी हो गया। ऐसा मालूम हो कि प्राण जा रहा है। एक बार तो मन में आया कि रामलाल की काकी को बुलवा लें। कमरे के देवी-देवताओं के चित्र निकालकर फेंक दिये। निर्विकल्प अवस्था में से मन जब कुछ नीचे उतरा तब कहीं जी में जी आया। ऐसा मालूम होने लगा कि जीवन किसके आधार से धारण किया जावे ? तब फिर भक्ति और भक्तों की ओर मन लगने लगा। तब तो हर किसी से मैं पूछने लगा कि "यह

मुझे क्या हो गया है ? " भोलानाथ बोला—" इसका कारण महाभारत में बताया गया है—समाधिस्थ पुरुष का मन जब समाधि से वापस लौटकर आता है तब वह किसके आधार से रहे ? इसीलिये उस समय वह भक्ति और भक्तों में रमने लगता है; यदि वैसा न हो तो फिर वह किसके आधार पर रहे ? "

और सचमुच ही जिन्होंने श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के दश वर्ष पूर्व (सन् १८७६) उनको देखा था उन लोगों के मुँह से सुना गया है कि उस समय भी श्रीरामकृष्ण के मुख के शब्द उन्हें बहुधा सुनने को नहीं मिलते थे। चौबीसों घन्टे भावसमाधि लगी हुई है तब बोले कौन ? नैपाल दरबार के कलकत्ता के प्रतिनिधि श्रीयुत विश्वनाथ उपाध्याय थे, (इन्हें श्रीरामकृष्ण "कप्तान" कहा करते थे।) उनसे सुना गया है कि उन्होंने एक बार लगातार तीन दिनों तक दिन रात श्रीरामकृष्ण को सतत समाधिमग्न रहते हुए देखा है। वे कहते थे— "इस प्रकार की लम्बी समाधि लग जाने पर उनकी पीठ पर गर्दन से नीचे कमर की हड्डी तक और घुटनों से तलवे तक गाय का घी बहुत मल २ कर लगाना पड़ता था तब उनकी समाधि उतरती थी और वे होश में आते थे ! "

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं भी कई बार हम लोगों से बताया है कि " मेरे मन की स्वाभाविक गति उर्ध्व दिशा की ओर (निर्विकल्प अवस्था की ओर) रहती है और समाधि लग जाने पर वहां से उतरने की उसकी इच्छा नहीं होती। इसी कारण तुम लोगों के लिये उसको ज़बरदस्ती नीचे लाना पड़ता है। पर कोई एकाध वासना शेष रहे बिना तो उसे नीचे नहीं ला सकते, इस कारण " तम्बाखू चाहिये "," पानी पीना है "," अमुक से भेंट करना है " इस तरह की छोटी मोटी वासना को मन में कुछ समय तक लगातार घुमाते रहना पड़ता है तब कहीं मन धीरे धीरे नीचे उतरता है। कभी २ नीचे उतरते २ वह बीच से ही अपने मूल पद (निर्विकल्प अवस्था) की ओर दौड़ जाता है तब फिर किसी वासना का जप करके उसे फिर नीचे खींचना पड़ता है ! " अस्तु—श्रीरामकृष्ण को रक्त-आमांश होने के लगभग एक विशेष घटना हुई। मथुरानाथ का उनके प्रति अपार भक्तिभाव और अलौकिक प्रेम तो था ही, पर इस घटना से उनकी भक्ति और प्रेम में सहस्र गुणित

वृद्धि हुई। मथुरानाथ की पत्नी श्री जगदम्बा दासी को उस समय संग्रहणी रोग हो गया था। बड़े २ वैद्यों और डॉक्टरों की औषधि देने पर भी कुछ फ़ायदा न होकर रोग उलटा बढ़ता ही गया और असाध्य समझा जाने लगा।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि मथुरानाथ रूप से सुन्दर था, पर उसका जन्म दरिद्र घराने में हुआ था। उसके रूप और गुण को ही देखकर रानी रासमणि ने उसे अपना दामाद बनाया था। विवाह हो जाने से उसका दारिद्र दूर हो गया था और वह अपनी बुद्धि और चतुराई के कारण रानी का दाहिना हाथ बन बैठा था। रानी की मृत्यु के पश्चात् उसकी सारी सम्पत्ति की व्यवस्था का भार इसीके हाथ में था। पर अब तो जगदम्बा दासी का इस असाध्य रोग में यदि अन्त हो जाता तो रानी की सम्पत्ति पर से उसके अधिकार उठ जाने की नौबत आ जाती। इसी कारण उसका मन इस समय बड़ा अशान्त था।

रोग असाध्य है ऐसा कहकर डॉक्टर चले गये और मथुरानाथ का कलेजा सूख गया। उन्हें घर में चैन नहीं पड़ती थी। वे एकदम दक्षिणेश्वर आये और वहां श्री जगदम्बा का दर्शन करके श्रीरामकृष्ण को ढूंढ़ते २ पंचवटी के समीप आये। श्रीरामकृष्ण उस समय वहीं पर थे। उनके चेहरे को उदास देखकर श्रीरामकृष्ण ने उनसे इस उदासी का कारण पूछा। मथुरानाथ दुःख के कारण अपने को सम्भाल न सके और श्रीरामकृष्ण के पैरों में लोट गये और गद्गद होकर आँसू बहाते २ सब बातें बतलाकर सिसकियाँ भरते हुए कहने लगे–" मेरा जो कुछ होना है सो तो हो ही रहा है। पर बाबा! अब इसके आगे मुझे आप की सेवा से वंचित होना पड़ेगा ऐसा दिख रहा है।" मथुरानाथ के ये दीन वचन सुनकर श्रीरामकृष्ण का हृदय पिघल गया। वे भावाविष्ट होकर उनसे बोले–" डरो मत, तुम्हारी पत्नी अच्छी हो जावेगी!" श्रीरामकृष्ण के मुख से यह अभय वाक्य सुनकर मथुरानाथ के जी में जी आया क्योंकि वे जानते थे कि श्रीरामकृष्ण की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। घर वापस आने पर उन्हें मालूम हुआ कि जगदम्बा दासी की बीमारी की अत्यन्त भयानक अवस्था दूर होकर उसके स्वास्थ्य में कुछ सुधार हो रहा है। श्रीरामकृष्ण

कहते थे–" उस दिन से जगदम्बा दासी की तबियत सुधरने लगी और उसका सब रोग (अपनी ओर अंगुली दिखाते हुए) इस शरीर में आ गया ! उसके अच्छे होने के बाद छः माह तक मुझको उदरशूल, रक्त–आमांश आदि रोगों की पीड़ा से व्याकुल रहना पड़ा । "

इस तरह छः महीने तक श्रीरामकृष्ण बीमार थे । हृदय सदा उनकी सेवा शुश्रूषा करने में लगा रहता था । मथुरबाबू ने सुप्रसिद्ध वैद्य गंगा प्रसाद सेन से उनकी चिकित्सा शुरू कराई और उनके पथ्य आदि का उचित प्रबन्ध किया । श्रीरामकृष्ण का शरीर अपना भोग भोग रहा था पर मन अपने दिव्यानन्द में निमग्न था । साधारण बाह्य जगत की ओर मन का झुकाव होना अभी ही प्रारम्भ हुआ था । पर उसकी स्वाभाविक गति अभी भी निर्विकल्प अवस्था की ओर ही दौड़ लगाने की थी । अतः किसी छोटे मोटे कारण से भी उन्हें एकदम समाधि लग जाती थी । लगभग इन्हीं दिनों दक्षिणेश्वर में संन्यासियों के दल के दल आने लगे थे । रातदिन इन सन्यासियों का वेदान्त विषयक वादविवाद चला करता था और अपना शरीर भोग भुगतते हुए श्रीरामकृष्ण यह सब सुनते रहते थे और किसी प्रश्न का ठीक २ समाधान न होने पर वे उसे दो चार सरल वार्ताओं द्वारा समझाकर हल कर देते थे जिससे उन लोगों का समाधान हो जाता था और विवाद मिट जाता था ।

अद्वैत भावभूमि में रहते हुए इस समय श्रीरामकृष्ण को एक तत्त्व का पूर्ण ज्ञान हो गया । वह तत्त्व यह है कि अद्वैत भाव में स्थिर होना ही सब प्रकार के साधन भजनादि का अन्तिम ध्येय है । इसका कारण यह है कि अब तक भारत-वर्ष में प्रचलित सभी धर्म सम्प्रदायों के अनुसार साधन करने से उन्हें यह प्रत्यक्ष अनुभव हो गया था कि इनमें से किसी भी मत की साधना करने से अन्त में साधक को उसी एक अवस्था की प्राप्ति होती है; और वह एक अवस्था है अद्वैत अवस्था । इस अवस्था के सम्बन्ध में उनसे पूछने पर वे कहते थे—" वह अवस्था बिल्कुल अन्तिम स्थिति है; ईश्वरप्रेम की अत्युच्च अवस्था में वह साधक को आप ही आप प्राप्त होती है; सभी मतों का अन्तिम ध्येय वही अवस्था है और यह भी ध्यान रखो कि जितने मत मतान्तर हैं उतने ही मार्ग हैं । " अस्तु–

उदरशूल और रक्त-आमांश से छः महीने तक अत्यन्त पीड़ित रहने के बाद धीरे २ श्रीरामकृष्ण का स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ दिनों में वे पूर्ववत् हो गये। उनके स्वास्थ्य ठीक होने के थोड़े ही दिनों के बाद और एक विशेष महत्त्व की घटना हुई। वह है गोविन्दराय नामक मुसलमानी धर्मसाधक का दक्षिणेश्वर में आगमन (सन् १८६६-६७)।

२—इस्लामधर्मसाधन और जन्मभूमिदर्शन।

(१८६६—६७)

गोविन्दराय का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। उन्हें अरबी और फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था। भिन्न २ धर्मों का अध्ययन करते २ उनका ध्यान मुसलमान धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और सब धर्मों में वही धर्म उन्हें पसन्द आया। अतः उन्होंने मुसलमान धर्म की दीक्षा ली और तभी से वे कुरान के पाठ और उसमें बताए हुए साधनों के अनुष्ठान में ही निमग्न रहने लगे। वे बड़े प्रेमी स्वभाव के थे। सम्भवतः वे मुसलमान धर्म में के सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उनका दक्षिणेश्वर में आने का क्या कारण था सो नहीं कहा जा सकता पर लगभग इसी समय वे दक्षिणेश्वर आये और काली मन्दिर के समीप की पंचवटी के नीचे उन्होंने अपना आसन जमाया। उस समय रानी रासमणि की अतिथि शाला में हिन्दू सन्यासियों के समान मुसलमान फकीरों का भी प्रबन्ध कर दिया जाता था। अतः भिक्षा के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो जाने के कारण गोविन्दराय वहां बड़े आनन्द से दिन बिताने लगे।

प्रेमी स्वभाव वाले गोविन्दराय की और श्रीरामकृष्ण की शीघ्र ही घनिष्ठता हो गई और गोविन्दराय के सरल विश्वास और ईश्वरप्रेम को देखकर श्रीरामकृष्ण बड़े मुग्ध हो गये। इस तरह श्रीरामकृष्ण का मुसलमान धर्म से परिचय हुआ। गोविन्दराय की संगति में कुछ दिन व्यतीत करने पर उनके मन में यह विचार आने लगा कि क्या यह भी ईश्वरप्राप्ति का ही एक मार्ग नहीं है? अनन्तलीलामयी जगदम्बा क्या इस मार्ग से भी कितने ही लोगों को अपना दर्शन देकर कृतार्थ नहीं करतीं? तब तो इस मार्ग से जाने वालों को वह किस रीति से कृतार्थ करती है यह अवश्य देखना चाहिये। शायद गोविन्दराय को भी उसने इसी उद्देश से यहां लाया होगा! उन्हीं के पास इस मार्ग की दीक्षा लेना उचित होगा।"

मन में कोई इच्छा उत्पन्न हो और उसे वे पूर्ण न करें, ऐसा कभी नहीं हुआ। उन्होंने तुरन्त ही अपनी इच्छा गोविन्दराय के पास प्रगट की और मुसलमान धर्म की दीक्षा लेकर यथाविधि साधनों का प्रारम्भ भी कर दिया। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"उस समय मैं 'अल्लाह' मंत्र का जप करता था; बिना कछोटा बांधे धोती पहिनता था और तीन बार नमाज़ पढ़ता था। उन दिनों मन मे हिन्दुभाव का निःशेष लोप हो गया था और हिन्दू देवी देवताओं को प्रणाम करना तो दूर रहा उनके दर्शन करने तक की प्रवृत्ति मन में नहीं होती थी। इस रीति से तीन दिन व्यतीत करने पर मुसलमानी धर्म का अन्तिम ध्येय मुझे प्राप्त हो गया। प्रथम तो मुझे एक लम्बी डाढ़ी बढ़ाये हुए गम्भीर, भव्य और ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष का दर्शन हुआ और बाद में मेरा मन अद्वैत भाव में लीन हो गया।"

हृदय कहता था—"मुसलमान धर्म की साधना के समय खान पान तक बिल्कुल मुसलमानों के समान करने की उत्कट इच्छा श्रीरामकृष्ण को उत्पन्न हुई। इतना ही नहीं उन्हें गोमांस भी खाने की प्रबल इच्छा हुई परन्तु केवल मथुरबाबू के अत्यन्त आग्रह और विनती के कारण अपनी इच्छा को उन्होंने दबा दिया। परन्तु बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण जब एक बार कोई हठ पकड़ लेते थे तो उसे पूरा करना ही पड़ता था। इस बात को जानते रहने के कारण मथुरबाबू ने एक मुसलमान रसोइये को बुलवाया और उसके निरीक्षण में एक ब्राह्मण रसोइये के द्वारा उनके लिये मुसलमानी ढंग से भोजन बनवाने का प्रबन्ध किया। उन तीन दिनों में श्रीरामकृष्ण ने काली मन्दिर के अहाते के अन्दर एक बार भी कदम नहीं रखा। अहाते के बाहर मथुरानाथ के नित्य के उतरने के स्थान में ही वे रहा करते थे।"

मुसलमान धर्मसाधना के सम्बन्ध में इतना ही जानकारी हमें श्रीरामकृष्ण और हृदय के पास से प्राप्त हुई है। मुसलमानी धर्म साधने के लिये श्रीरामकृष्ण को केवल तीन ही दिन लगे!

श्रीरामकृष्ण की बीमारी अभी ही दूर हुई थी, पर इतने ही में वर्षा के दिन आ गये। वर्षाऋतु में गंगा जी का पानी गंदला हो जाने के कारण पीने के लिये

स्वच्छ पानी न मिलने से, उनके पेट में फिर कुछ खराबी पैदा न हो जावे इस डर से मथुरबाबू आदि ने निश्चय किया कि श्रीरामकृष्ण कुछ दिनों तक कामार-पुकूर में ही जाकर रहें। कामारपुकूर में श्रीरामकृष्ण की गृहस्थी शिव की गृहस्थी के ही समान थी यह बात मथुरबाबू और उनकी भक्तिमती पत्नी जगदम्बा दासी दोनों को ही पूर्ण रूप से विदित थी। इसीलिये वहां रहते समय "बाबा" को किसी प्रकार का कष्ट न हो और उनकी सभी व्यवस्था ठीक २ रहे इस उद्देश से उन दोनों ही ने याद कर कर के गृहस्थी के लिये आवश्यक सब प्रकार की सामग्री और बाबा की जरूरत की सभी वस्तुएँ जुटाकर उनके साथ भेज दीं। शुभमुहूर्त देखकर ये लोग रवाना हुए। श्रीरामकृष्ण के साथ हृदय और ब्राह्मणी भी थी। श्रीरामकृष्ण की माता ने जन्म भर दक्षिणेश्वर में रहने का निश्चय कर लिया था। इसलिये वे उनके साथ नहीं गईं।

इसके पूर्व आठ वर्ष तक श्रीरामकृष्ण अपने गांव को नहीं गये थे। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इतने वर्षों तक भेंट न होने के कारण उनके आप्त लोग और सभी ग्रामनिवासी उनसे मिलने के लिये बड़े उत्सुक थे। इन आठ वर्षों में उनके कानों में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में तरह २ की बातें आया करती थीं; कभी तो वे स्त्रियों का वेष लेकर "हरि हरि" करते रहते हैं और कभी "अल्ला अल्ला" ही करते रहते हैं; आज तो "राम राम" की पुकार कर रहे हैं तो कल "माता माता" करते व्याकुल हो रहे हैं इस प्रकार की कुछ न कुछ भिन्न २ बातें हुआ करती हैं—यही वे लोग सुना करते थे। अतः अब वे स्वयं ही यहां आ रहे हैं तो सच्ची अवस्था प्रत्यक्ष देखने को मिल जावेगी यह समझकर उनकी भेंट के लिये लोगों में बड़ी उत्कंठा थी।

श्रीरामकृष्ण अपने गांव में पहुँच गये; पर लोगों को उनके पूर्व के और वर्तमान आचरण और स्वभाव में कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया। वही प्रेमयुक्त विनोदी स्वभाव, वही सत्यनिष्ठा, वही धर्मपरायणता और वही ईश्वर-नाम स्मरण का उल्लास—सब कुछ पूर्ववत् ही था। अन्तर केवल इतना ही हुआ था कि वे पहिले की अपेक्षा अब अधिक अन्तर्मुखी वृत्ति से रहते थे और उनके मुख पर एक प्रकार की गम्भीरता झलकती थी जिसके कारण एकदम उनके सामने आने में या उनसे क्षुद्र सांसारिक बातें बोलने में संकोच मालूम पड़ता था। पर

चाहे जो हो, जब से श्रीरामकृष्ण अपने ग्राम में आकर रहने लगे तब से वहां पहिले के समान आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। श्रीरामकृष्ण के बहुत समय के बाद आने के कारण उनके घर के लोगों ने उनकी पत्नी को भी वहां लिवा लाने के लिये जयरामवाटी को मनुष्य भेजा। इस सम्बन्ध में स्वयं श्रीरामकृष्ण ने अपनी सम्मति या असम्मति कुछ भी प्रगट नहीं की। विवाह के पश्चात् अब तक उनकी पत्नी ने उन्हें केवल एक ही बार देखा था। उसे सातवां वर्ष लगने पर, कुल की रीति के अनुसार, श्रीरामकृष्ण अपनी ससुराल में एक दिन के लिये गये थे तभी उसने उन्हें देखा था। परन्तु उस समय तो वह बिल्कुल छोटी थी और उस समय का उसे केवल इतना ही स्मरण था कि श्रीरामकृष्ण के आने पर उसके मन में यह भाव आया कि घर में किसी जगह छिपकर बैठ रहना चाहिये; पर वह अपनी इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकी क्योंकि घर के पास एक तालाब से उस समय हृदय बहुत से कमल ले आया और उसे घर में से ढूंढ़कर निकाल लाया और उन कमलों से उसे श्रीरामकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करनी पड़ी! इसके पश्चात् और छः वर्ष बीतने पर जब उसे तेरहवां वर्ष लगा तब उसे कामारपुकूर में एक मास रहने के लिये लाये थे। परन्तु उस समय श्रीरामकृष्ण और उनकी मातेश्वरी दोनों के दक्षिणेश्वर में रहने के कारण उसने उस समय उन दोनों में से किसी को भी नहीं देखा था। उसके छः मास पश्चात् वह पुनः डेढ़ मास अपनी ससुराल में कामारपुकूर में रही; परन्तु उस समय भी वैसा ही हुआ। इस कारण इसे विवाह के उपरान्त श्रीरामकृष्ण और उनकी पत्नी की पहिली ही भेंट कहना अनुचित न होगा।

इस बार कामारपुकूर में श्रीरामकृष्ण छः, सात महीने रहे। उनके लड़कपन के सभी मित्रगण उनके आसपास जमा हो गये और उन्हें देखकर श्रीरामकृष्ण को भी आनन्द हुआ। जैसे किसी मनुष्य को दिन भर बाहर परिश्रम करने के बाद संध्या को घर आने पर अपने लड़के बच्चों से मिलकर आनन्द होता है वैसा ही आनन्द श्रीरामकृष्ण को आज ८ वर्ष की कठोर तपश्चर्या के बाद अपने गांव में लौटकर आने से हुआ। तथापि ऐहिक सुखों की नश्वरता का उन्हें अब पूर्ण ज्ञान हो गया था इसलिये हास्यविनोद में मग्न रहते समय भी वे सदैव इसी बात पर दृष्टि रखते थे कि उनके पास आने वाले लोगों का ध्यान

और किसी तरह आकृष्ट हो। इन दिनों उनके पास सदा लोगों की भीड़ लगी रहती थी। बालक हो या वृद्ध, गरीब हो या अमीर, सभी उनके पास बैठना पसन्द करते थे। धर्मदास लाहा की भक्तिमति विधवा भगिनी प्रसन्न, उसका पुत्र और श्रीरामकृष्ण का बालपन का साथी गयाविष्णु लाहा, सरल स्वभाव वाला श्रद्धावान् श्रीनिवास शांखारी, पाईनबाबू के घर की भक्तिपरायण स्त्रियां, श्रीरामकृष्ण की भिक्षामाता धनी—इत्यादि मण्डली सदा उनके पास रहा करती थी। उन लोगों की भक्ति, श्रद्धा, सरल स्वभाव आदि के सम्बन्ध की अनेक बातें श्रीरामकृष्ण हमें सदा बताया करते थे। इन लोगों के अतिरिक्त जिन लोगों को उनके पास सदा रहना सम्भव नहीं था वे लोग भी प्रातः दोपहर या संध्या को समय मिलते ही उनके पास आकर कुछ वार्तालाप कर लिया करते थे। किसी के घर में प्रसंगवश कोई पक्वान्न बना हो तो वह उसमें से कुछ भाग अलग रखकर बड़े प्रेम और भक्ति से श्रीरामकृष्ण के लिये ला देता था!

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपनी इच्छा या अनिच्छा प्रगट ही नहीं की थी। तिस पर भी जब घर के लोगों ने उनकी पत्नी को कामारपुकूर बुलवा लिया, तब उन्होंने उसे अच्छी शिक्षा देने का अपना कर्तव्य ठीक तरह से पूर्ण करने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्ण का विवाह हो गया है यह जानकर उनके संन्यासाश्रम के गुरु श्री तोतापुरी ने उनसे एक बार कहा था—"विवाह हो जाने से क्या हुआ? स्त्री के समीप रहने पर भी जिसका त्याग, वैराग्य, विवेक, विज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता है वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है और उसीमें ब्रह्मज्ञान का यथार्थ प्रकाश हुआ है ऐसा समझना चाहिये। स्त्री और पुरुष के भेदभाव की कल्पना ही जिसके मन से समूल नष्ट हो गई उसीमें ब्रह्मज्ञान यथार्थ में रहता है। जिसके मन से स्त्री पुरुष के भेद की कल्पना नष्ट नहीं हुई है उसे अभी ब्रह्मज्ञान होने में विलम्ब है ऐसा समझना चाहिये।" श्रीरामकृष्ण सोचने लगे कि इतने दिनों की तपश्चर्या को कसौटी पर कसने का अच्छा अवसर आया। साथ ही साथ उन्होंने अपनी पत्नी को योग्य शिक्षा देने का निश्चय किया।

गृहकार्य कैसे करना चाहिये यहां से लगाकर लोगों का स्वभाव कैसे पहिचानना, पैसे का सदुपयोग किस तरह करना, व्यवहार में किसके साथ कब

कहां कैसा बर्ताव करना, परमेश्वर के चरणों में अपना सर्व भार समर्पण करके किस तरह रहना—इत्यादि सभी विषयों की ठीक २ शिक्षा अपनी पत्नी को देना उन्होंने अभी से शुरू कर दिया। इस सम्बन्ध में स्वयं माता जी जो कहती थीं उसका वर्णन प्रथम भाग में किया जा चुका है (भाग १, प्रकरण १६, विवाह और पुनरागमन)। इससे यह स्पष्ट दिखता है कि श्रीरामकृष्ण ने इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पूर्ण रूप से पालन किया। इतना ही बतला देना बस होगा कि श्रीरामकृष्ण की इस शिक्षा के और कामगन्ध हीन दिव्य प्रेम के कारण श्री माता जी की पारमार्थिक उन्नति शीघ्रता से होने लगी और वे प्रत्यक्ष निर्विकल्प समाधि की मंज़िल तक पहुँच गईं और वे श्रीरामकृष्ण को इष्ट देवता जानकर आमरण उनकी पूजा करती रहीं।

श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को सब प्रकार की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। पर श्रीरामकृष्ण का यह कार्य ब्राह्मणी की समझ में नहीं आया। संन्यास दीक्षा लेते समय भी ऐसा ही हुआ था। वह समझती थी कि संन्यास लेने से श्रीरामकृष्ण का ईश्वरप्रेम समूल नष्ट हो जावेगा। उसी तरह इस समय भी उसे ऐसी भ्रमात्मक कल्पना होने लगी कि यदि श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी से अधिक सम्बन्ध रखा तो उनके ब्रह्मचर्य को क्षति पहुँचेगी। यह बात उसने श्रीरामकृष्ण को कह भी दी। परन्तु इस बार भी श्रीरामकृष्ण ने पहिले के समान ही उसके कहने की ओर ध्यान नहीं दिया। इस पर से उसे उन पर क्रोध भी आया और आगे चलकर उसे अभिमान आ जाने पर कुछ समय तक श्रीरामकृष्ण पर से उसकी श्रद्धा प्रायः उठ सी गई थी। हृदय कहता था कि उसका यह भाव कभी २ स्पष्ट दिखाई भी पड़ता था। उदाहरणार्थ—किसी आध्यात्मिक विषय की चर्चा उसके पास निकालकर यदि कोई कहे कि 'इस विषय के बारे में श्रीरामकृष्ण का मत क्या है सो जानना चाहिये' तब इस पर से वह क्रुद्ध होकर कह बैठती थी—"वह और अधिक क्या बता सकेगा? उसको भी ज्ञान देने वाली तो मैं ही हूं न?" अथवा किसी २ समय वह किसी छोटी सी बात पर से या बिना कारण ही घर की स्त्रियों पर व्यर्थ नाराज़ हो जाती थी। पर श्रीरामकृष्ण उस की इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देते थे और उसके प्रति अपना प्रेमपूर्ण और भक्तियुक्त बर्ताव उन्होंने पूर्ववत् जारी रखा था। श्रीरामकृष्ण के उपदेश के

अनुसार माता जी ब्राह्मणी को अपनी सास के समान मानती थीं, उनका मान रखती थीं और आज्ञापालन करती थीं।

क्रोधात् भवति संमोहः
संमोहात् स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः —

यही अवस्था ब्राह्मणी की उस समय होने लगी। कहां कैसा बर्ताव करना यह भी कभी २ उसकी समझ में ठीक २ नहीं आता था। कामारपुकूर सरीखे छोटे से गांव में समाज-बन्धन में शिथिलता न रहने के कारण किसी मनुष्य को उसका उद्देश चाहे कितना भी अच्छा और शुद्ध क्यों न हो-इच्छानुसार बर्ताव करने की स्वतंत्रता नहीं रहती है इस बात को भूलकर वह इन्हीं दिनों एक बार बड़े झगड़े में पड़ गई थी।

श्रीनिवास शांखारी का इसके पूर्व उल्लेख हो चुका है। उसकी जाति यद्यपि उच्च नहीं थी तथापि ईश्वर भक्ति में वह बहुतेरे ब्राह्मणों से श्रेष्ठ था। एक दिन वह श्रीरामकृष्ण के यहां भोजन करने के लिये आया था। दो प्रहर तक भक्ति विषयक अनेक वार्ताएँ होती रहीं। स्वयं ब्राह्मणी को भी उसकी भक्ति और विश्वास को देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। श्रीनिवास भोजन करने के बाद गांव के रिवाज के अनुसार अपनी झूंठन साफ करने लगा परन्तु ब्राह्मणी उसको रोकने लगी। वह बोली-" तू आराम से बैठ, मैं तेरी झूंठन साफ कर देती हूं।" ब्राह्मणी के सामने वह बेचारा कुछ बोल नहीं सका और बिना झूंठन साफ किये ही अपने घर चला गया। श्रीनिवास की झूंठन ब्राह्मणी साफ करने वाली है यह समाचार स्त्री समाज में पहुँचा और उनमें इस विषय पर विवाद होने लगा। आसपास की बहुत सी स्त्रियां जुड़ गईं और विवाद उग्र रूप धारण करने लगा। यह बात हृदय के कान तक पहुँची और " इस विवाद का परिणाम बुरा होगा, आप उसकी झूंठन मत साफ करिये " कहकर उसने बारम्बार ब्राह्मणी को समझाया पर उसने अपनी हठ न छोड़ी। हृदय को भी बहुत क्रोध हो आया और उसका और ब्राह्मणी का झगड़ा शुरू हो गया। अन्त में उसने कहा कि

" यदि तुमको अपनी ही हठ कायम रखनी है तो मैं तुमको इस घर में रहने नहीं दूंगा। " ब्राह्मणी ने भी उत्तर दिया-" नहीं रहने दोगे तो न सही, तेरे घर के भरोसे मैं थोड़े ही हूं। उसके बिना मेरा कोई काम नहीं रुक सकता। शीतला का मन्दिर तो मेरे लिये कहीं नहीं गया है। मैं वहीं जाकर रह जाऊंगी-समझा ? " बात जब इस हद्द तक पहुँच गई तब घर के सभी लोगों ने बीच में पड़कर ब्राह्मणी को किसी प्रकार समझा बुझाकर इस झगड़े को मिटाया।

ब्राह्मणी चुप तो रह गई पर यह बात उसके अन्तःकरण में चुभ गई। क्रोध का वेग उतर जाने पर इस घटना का उसने शान्तिपूर्वक अपने मन में विचार किया और उसे यह निश्चय हो गया कि जो कुछ हुआ सो ठीक नहीं हुआ। उसने यह सोचा कि इतना झगड़ा होने के बाद आपस में मन इतना कलुषित हो जाने पर यहां अब रहना उचित नहीं है। उसी तरह उसने इस पर भी विचार किया कि श्रीरामकृष्ण के प्रति मेरे मन में प्रेम और भक्ति कम क्यों हो रही है—उसका मुख्य कारण क्या है ? तब इसका कारण उसके ध्यान में आ-जाने पर वह स्वयं अपने ऊपर क्रुद्ध हुई और अपने अनुचित आचरण के लिये उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।

तदनंतर थोड़े दिनों के बाद उसने एक दिन श्रीरामकृष्ण की श्रीगौरांगभाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक पूजा की और अपने सब अपराधों के लिये उसने उनसे क्षमा मांगकर वहां से जाने की अनुमति प्राप्त की। इस तरह श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति में ६ वर्ष बिताकर भैरवी ब्राह्मणी काशी के लिये रवाना हुई।

इस प्रकार छः, सात महीने कामारपुकूर में रहकर श्रीरामकृष्ण सन् १८६७ के अक्टूबर-नवम्बर मास में दक्षिणेश्वर वापस आये। उसके थोड़े ही दिनों के बाद उनके जीवन में और एक विशेष घटना हुई। वह है उनकी तीर्थयात्रा जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जावेगा।

३—श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा ।

(सन् १८६८)

"जिसके हृदय में भक्तिभाव रहता है वह यदि तीर्थ-यात्रा करने जाता है तो उसका वह भाव और अधिक बढ़ता है। जिसके हृदय में भक्तिभाव है ही नहीं उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं होता।"

"देवस्थान और तीर्थों के दर्शन के पश्चात् उन्हीं भावों का बारम्बार चर्वण करना, पुनः २ मनन करना चाहिये।"

"मथुरबाबू ने तीर्थयात्रा में १ लाख रुपये से अधिक ख़र्च किया।"

—श्रीरामकृष्ण।

श्रीरामकृष्ण के जीवन चरित्र की सामान्य बातें भी सूक्ष्म रीति से विचार करने पर अर्थपूर्ण दिखाई देती हैं। उनमें से एक भी उद्देशरहित नहीं मालूम पड़ती। तब फिर बड़ी बातों के सम्बन्ध में कहना ही क्या है? श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा उनके जीवन का एक विशेष प्रसंग है। अतः उनकी तीर्थयात्रा में कौनसा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है इसका यहां कुछ विचार करें।

श्रीरामकृष्ण के दिव्य ईश्वरप्रेम, अलौकिक चरित्र, अपूर्व और उदार आध्यात्मिक उपलब्धि और शक्तिसंचय का सारे संसार में विस्तार होना तथा प्रभाव पड़ना उनके साधनकाल से ही प्रारंभ हो गया था। हम पीछे देख चुके

हैं कि जिस समय श्रीरामकृष्ण किसी भाव में सिद्ध हो जाते थे उस समय उस भाव के अनेक साधक उनके पास आया करते थे और उनमें अपने विशिष्ट भाव का पूर्णादर्श देखकर उनसे अपनी साधना में सहायता प्राप्त करके वहां से चले जाते थे। इस साधनकाल के बाद उनकी अलौकिक दैवी शक्ति का विस्तार उनकी तीर्थयात्रा के सयम हुआ। उस समय भी श्रीरामकृष्ण के अनेक तीर्थों में पहुँचने पर वहां के साधकों पर उनके आध्यात्मिक शक्तिसंचय का परिणाम होता था। अतः ऐसा मालूम पड़ता है कि भिन्न २ स्थानों के यथार्थ साधकों के सामने उनके भावों का पूर्ण आदर्श उपस्थित करना भी सम्भवतः इस तीर्थयात्रा का उद्देश रहा हो।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि "चौसर की गोट जब सभी घरों में घूम चुकती है तभी वह अपने घर में पककर विश्राम करती है। बिल्कुल हलके दर्जे के मनुष्य से लेकर सार्वभौम सम्राट तक की, संसार के सब प्रकार के लोगों की अवस्था देखने, सुनने और उसका अनुभव प्राप्त कर लेने पर ही जब मन की दृढ़ धारणा होती है कि यह सब कुछ तुच्छ और असार है तभी साधक परमहंस पद को प्राप्त करता है और यथार्थ ज्ञानी बनता है।" यह तो हुई साधारण साधकों की स्वयं की उन्नति की बात। अब जिसे जगद्गुरु होना है उसे और कितना अधिक परिश्रम करना पड़ता होगा? इसके सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—"आत्महत्या करने के लिये एक सूई भी बस होती है, पर जब दूसरे को मारना है तो ढाल तलवार आदि सभी शस्त्र चाहिये!" यही बात जगद्गुरु होने वाले को लागू होती है। उसे सब प्रकार की आध्यात्मिक अवस्थाओं की पूरी जानकारी हो तभी वह दूसरों के संशयों का निवारण करके उन्हें योग्य मार्ग दिखा सकेगा। इसके लिये उसे पूर्व के अवतारों और आचार्यों द्वारा प्रदर्शित उन्नति के मार्गों को यथार्थ रूप से जानना पड़ता है, लोग उनके अनुसार चलते हैं या नहीं, और यदि नहीं चलते हैं तो उसका क्या कारण है उसे खोजकर आधुनिक काल के लिये उचित मार्ग ढूंढ़ना पड़ता है। इसीलिये इस युग के अवतार श्रीरामकृष्ण के लिये देश की आध्यात्मिक स्थिति उस समय कैसी थी यह जानना आवश्यक था। तीर्थयात्रा से उनका यह कार्य बहुत कुछ सिद्ध हो गया

शास्त्रीय दृष्टि से देखने से उनकी यात्रा का एक कारण और दिखाई देता है। शास्त्रों का कहना है कि ईश्वर दर्शन करके जो पुरुष धन्य हो गये हैं उन महापुरुषों के आगमन से तीर्थों का तीर्थत्व स्थिर रहता है। ऐसे महापुरुष उस स्थान में ईश्वर का किसी विशेष प्रकार से दर्शन करने के लिये व्याकुल होकर आते हैं और वहां रहते हैं। इसलिये वहां नये नये ईश्वरी भाव उत्पन्न हुआ करते हैं या पहिले से रहनेवाले भाव ही अधिक जागृत हो जाते हैं। इसीलिये ऐसे स्थानों में जब साधारण मनुष्य जाते हैं तो उन पर वहां के उन ईश्वरी भावों का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है। यद्यपि वर्तमान विषय से तीर्थों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है तोभी तीर्थों के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण क्या कहा करते थे वह यहां पर बता देना विषयान्तर नहीं होगा। वे कहा करते थे—"ईश्वर के दर्शन के लिये व्याकुल होकर जिस स्थान में अनेक साधक जप, तप, अनुष्ठान आदि करते आये हैं उस स्थान में यह निश्चय जानो कि ईश्वर का प्रकाश अवश्य ही है। उस स्थान में साधकों की भक्ति की प्रबलता के कारण ईश्वरी भावना एकत्रित होकर उसके संयोग से वहां का वातावरण भी ईश्वरमय हो जाता है! अतः ऐसे स्थानों में साधकों का ईश्वरीभाव तुरन्त जागृत हो जाता है। ईश्वर का दर्शन करने के उद्देश से उस स्थान में पुरातनकाल से कितने ही साधु, भक्त और सिद्ध पुरुष जा चुकते हैं। ये लोग सारी वासनाओं का त्याग करके उस स्थान में एकाग्रचित्त से ईश्वर की भक्ति कर चुकते है। अतः यद्यपि अन्य सभी स्थानों में ईश्वर समान रूप से व्याप्त है, तथापि ऐसे स्थानों में उसका अधिक अंश प्रकाशित रहता है। पानी की आवश्यकता होने से पृथ्वी जहां पर खोदी जाती है वहीं पानी मिल जाता है; पर तोभी जहां पर कुआँ, बावली, तालाब या सरोवर है वहां तो ज़मीन को खोदने की भी जरूरत नहीं है, थोड़ा हाथ नीचा करते ही पानी मिल जाता है।"—वैसे ही "ईश्वर के विशेष प्रकाश से संयुक्त इन तीर्थों के दर्शन के बाद वहां के भावों का चर्वण तथा मनन करते रहना चाहिये" ऐसा श्रीरामकृष्ण कहते थे। वे और भी कहते थे कि—"जैसे गाय बैल प्रथम इधर उधर घूमकर बहुत सा खा लेते हैं और बाद में एक स्थान में निश्चिन्त बैठकर उस खाये हुए पदार्थ को पुनः मुँह में लाकर जुगाली करते हैं उसी तरह देवस्थान, तीर्थस्थान आदि का दर्शन करने से मन में जो

पवित्र भावनाएँ उत्पन्न होती हैं उन पर निश्चिन्त होकर एकान्त में बैठकर पुनः २ विचार करना चाहिये, उन्हीं में विलीन होना चाहिये। ऐसा न करके यदि घर लौटने पर उन भावानाओं को भूलकर पुनः उसी चक्कर में पड़ गये और संसार के प्रपंचमय विचारों में ही मन को दौड़ाते रहे तो इन देवस्थानों और तीर्थों के दर्शन से क्या लाभ हुआ? ऐसी अवस्था में वे ईश्वरी भावनाएँ मन में कैसे स्थिर रह सकती हैं?

एक समय की बात है कि श्रीरामकृष्ण के साथ कालीघाट पर श्री जगदम्बा के दर्शन के लिये बहुत सा शिष्य समुदाय गया था। वहां से वापस आते समय उनमें एक की ससुराल रास्ते में ही पड़ने के कारण वह वहां गया और वहां के लोगों के आग्रह करने पर रात को भी वहीं रह गया। दूसरे दिन जब वह श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये पहुँचा तब उन्होंने उससे पूछा—"तू रात को कहां था?" उसके सब वृत्तान्त बताने पर श्रीरामकृष्ण बोले—"अरे यह क्या किया? जगदम्बा का दर्शन करके आया था। तो उसी के चिन्तन में मग्न होकर उसी का निदिध्यास करना था। सो तूने उसे तो छोड़ दिया और किसी विषयी मनुष्य के समान रात भर ससुराल में जाकर रहा, क्या कहा जाय तुझको? देव-दर्शन करने के बाद उस समय उत्पन्न होने वाली पवित्र भावनाओं का बारम्बार सतत मनन न किया जावे तो वे भावनाएँ मन में स्थिर किस तरह रहेंगी? अस्तु—

श्रीरामकृष्ण की इस तीर्थयात्रा में ये ही भिन्न २ उद्देश दिखाई देते हैं।

कामारपुकूर से श्रीरामकृष्ण के लौटने के बाद मथुरानाथ को तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई। माघ के ही महीने में प्रस्थान करने का मुहूर्त निश्चित हुआ। मथुरानाथ के कुलगुरू के पुत्र को साथ ले जाना तय हुआ। सब योजना निश्चित हो जाने पर मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्ण से अपने साथ चलने के लिये विनती की। श्रीरामकृष्ण ने भी—अपनी वृद्धा माता और हृदय यदि साथ चलते हों तो—अपनी स्वीकृति दे दी। उन दोनों ने भी जाना स्वीकार किया और श्रीरामकृष्ण का मथुर-बाबू के साथ चलना निश्चित हो गया। श्रीरामकृष्ण का साथ मिल जाने से मथुरबाबू को बड़ा आनन्द हुआ और वे यात्रा की सभी तैयारी बड़ी शीघ्रता और उत्साह के साथ करने लगे।

सब तैयारी हो जाने पर मण्डली यात्रा के लिये चली। मथुरानाथ के साथ उनकी पत्नी, श्रीरामकृष्ण और उनकी माता, हृदय, मथुरानाथ का गुरुपुत्र, कामदार, मुन्शी, रसोइया, पानीवाला, और अन्य नौकर चाकर सब मिलकर लगभग १२५ आदमी थे। एक सेकंड क्लास का डब्बा और तीन थर्ड़क्लास के डब्बे रिजर्व किये गये और रेलवे कम्पनी से यह तय कर लिया गया कि कलकत्ते से काशी तक रास्ते में किसी भी स्टेशन पर ये डब्बे अलग करके खड़े रखे जा सकेंगे।

सर्व प्रथम यह मण्डली वैद्यनाथ के दर्शन के लिये गई और वहां कुछ दिन रुकी रही। इस क्षेत्र के समीप एक छोटे से गांव में लोगों की दीन हीन दशा देखकर श्रीरामकृष्ण ने मथुरबाबू से उन सबों को एक दिन पेट भर भोजन और प्रत्येक को एक एक वस्त्र दिलाया—यह वृत्तान्त "मथुरबाबू और श्रीरामकृष्ण–" शीर्षक प्रकरण में बता चुके हैं (देखो भाग १, प्रकरण १६)।

वैद्यनाथ से यह मण्डली सीधे काशी चली गई। मार्ग में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। सिर्फ़ काशी के पास के एक स्टेशन पर एक मज़ेदार बात हुई। स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई और हृदय और श्रीरामकृष्ण गाड़ी छुटने के लिये कुछ विलम्ब देखकर स्टेशन के बाहर इधर उधर टहल रहे थे। इधर गाड़ी का समय हो गया और वह छुट गई। ये दोनों वहीं रह गये! मथुरबाबू अगले स्टेशन में देखते हैं तो गाड़ी में श्रीरामकृष्ण और हृदय नहीं हैं! तब एकाएक उनके ध्यान में आया कि पिछले स्टेशन पर ये दोनों उतरे थे शायद ये वहीं रह गये होंगे। अब क्या करना चाहिये यह चिन्ता उन्हें होने लगी परन्तु हृदय श्रीरामकृष्ण के साथ है यह सोचकर उनकी चिन्ता कुछ कम हुई। उन्होंने तुरन्त पिछले स्टेशन के स्टेशन मास्टर को तार भेजा कि अब जो गाड़ी आवे उसमें उन दोनों को बिठाकर भेज दें। परन्तु इधर श्रीरामकृष्ण को अधिक समय तक रुकना नहीं पड़ा। राजेन्द्रलाल वंद्योपाध्याय नामक एक रेलवे के अधिकारी स्पेशल गाड़ी से काशी जा रहे थे। उनकी गाड़ी थोड़े ही समय में वहां आई और वे उन दोनों को अपनी गाड़ी में बिठाकर काशी ले गये।

काशी में मथुरबाबू ने केदारघाट के पास दो बड़े २ घर किराये पर लिये। काशी में मथुरबाबू का ठाटबाट किसी राजा से कम नहीं रहता था। बाहर जाते समय एक नौकर उन पर चांदी का छत्र लेकर चलता था और आगे और पीछे भालदार चोबदार चांदी का डंडा लेकर चलते थे।

काशी पहुँचने के दिन से मथुरबाबू ने पण्डित, विद्वान्, सन्यासी आदि लोगों के लिये अन्नदान शुरू कर दिया था। एक दिन उन्होंने मुक्तद्वार भोजन भी कराया और भोजन के लिये आने वाले प्रत्येक मनुष्य को एक एक वस्त्र और एक एक रुपया दक्षिणा दी। वैसे ही वृंदावन आदि की यात्रा से लौटने पर उन्होंने श्रीरामकृष्ण के आदेश से एक दिन "कल्पतरु" बन कर मांगने वालों की इच्छा के अनुसार नित्य व्यवहार की वस्तुओं का दान दिया। मधुकरी बाटते समय लेने वालों में लड़ाई झगड़े हो जाते थे और कभी २ मारपीट तक हो जाती थी। अन्य स्थानों के समान ऐसी बात काशी ऐसे क्षेत्र में और वह भी मधुकरी लेने के लिये आये हुए ब्राह्मणों में होते देख श्रीरामकृष्ण को बुरा लगा और वहां के रहने वाले लोग भी ऐसे काम कंचनासक्त हैं यह देखकर उनके सरल हृदय को बड़ा दुःख हुआ। उनकी आँखें डबडबा गईं और वे बोल उठे–"माता! तू मुझे यहां क्यों लाई, इसकी अपेक्षा मेरा दक्षिणेश्वर में रहना क्या बुरा था?"

श्रीरामकृष्ण बारम्बार कहा करते थे कि ईश्वरी भाव मन में न रखते हुए तीर्थों की यात्रा करने से या तीर्थों में निवास करने पर भी कोई फल प्राप्ति नहीं होती। किसी की तीर्थयात्रा करने की इच्छा का समाचार जानने पर वे कहते थे, "अरे भाई! जिसमें यहां भक्ति है उसे वहां भी भक्ति मिलेगी और जिसमें यहां भक्ति नहीं है उसे वहां भी नहीं मिल सकती।" वे यह भी कहते थे कि "जिसके हृदय में भक्तिभाव है वह यदि तीर्थ जावे तो उसका भक्तिभाव अधिक बढ़ता है, पर जिसके हृदय में भक्तिभाव नाम को नहीं है उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं हो सकता। कई बार सुनते हैं कि अमुक का लड़का भागकर काशी चला गया है; बाद में समाचार मिलता है कि उसने खटपट करके वहां नौकरी ढूंढ़ ली है और उसके पास से घर में हर महीने पैसे भी आते हैं! तीर्थों में रहने के लिये लोग जाते हैं और वहां जाकर दूकान खोलकर रोज़गार भी करने लग जाते

हैं ! इस तरह कहीं भक्ति मिला करती है ? यह तो हुई आत्मवंचना ! मथुरबाबू के साथ काशी गया तो वहां क्या देखा ? जो यहां, वही वहां। यहां जैसे आमों की अमराई, इमली के पेड़, बांस के पेड़ों का झुण्ड वैसे ही वहां भी। यह सब देखकर मैं हृदय से बोला-" क्यों रे हृदू ! हमने यहां आकर नई कौन सी बात देखी ? हां, घाट पर की विष्ठा को देखकर इतना तो अवश्य जान गये कि यहां के लोगों की पाचनशक्ति हमारी अपेक्षा बड़ी ज़बरदस्त है ! "

काशी में रहते तक श्रीरामकृष्ण प्रतिदिन पालकी में बैठकर श्री विश्वनाथ के दर्शन के लिये जाते थे। हृदय सदा उनके साथ रहता था। जाते २ मार्ग में ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो जाते थे। देव दर्शन के समय का तो कहना ही क्या है ? सभी देवताओं के दर्शन करते समय उनकी यही दशा हो जाती थी। पर तो भी श्री केदारनाथ के दर्शन के समय उन्हें विशेष भावावेश हो जाता था।

देवताओं के सिवाय साधुसन्तों के दर्शन के लिये भी वे जाया करते थे। उस समय भी हृदय उनके साथ रहता था। श्री परमहंस त्रैलिङ्गस्वामी के दर्शन के लिये वे कई बार गये थे। श्री त्रैलिङ्गस्वामी उन दिनों मणिकर्णिका घाट पर मौनवृत्ति होकर रहते थे। प्रथम दर्शन के दिन स्वामी जी ने अपनी नास की डब्बी श्रीरामकृष्ण के आगे रखकर उनका स्वागत किया। श्रीरामकृष्ण ने उनके शरीर पर के सब लक्षणों को बारीकी के साथ देखकर हृदय से कहा—" हृदू, इनमें यथार्थ परमहंस के सभी लक्षण दिखाई देते हैं; ये साक्षात् विश्वेश्वर हैं ! " मणिकर्णिका घाट के समीप एक घाट बनाने का संकल्प स्वामी जी ने उस समय किया था। श्रीरामकृष्ण के कहने से हृदय ने कई टोकनी मिट्टी वहां डालकर उस कार्य में सहायता पहुँचाई। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन स्वामी जी को अपने घर बुलाकर अपने हाथ से भोजन कराया।

त्रैलिङ्गस्वामी के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण हमें कई बार कुछ २ बातें बताया करते थे। वे कहते थे—" ऐसा दिखता था कि साक्षात् विश्वेश्वर उनके शरीर का आश्रय लेकर निवास कर रहे हैं। उनके कारण समस्त काशी उज्ज्वल हो गई है। ज्ञान की अत्यन्त उच्च अवस्था उन्हें प्राप्त थी। शरीर की ओर उनका ध्यान

बिल्कुल नहीं था। प्रखर धूप के कारण नदी के किनारे की बालू इतनी तप्त हो गई थी कि उस पर नंगे पैर चार कदम चलना भी कठिन था पर वे वहां उस पर आनन्द से लेटे थे। उस समय वे बोलते नहीं थे। मैंने उनसे इशारे से पूछा "ईश्वर एक है कि अनेक?" उन्होंने इशारे से ही उत्तर दिया—"समाधिस्थ होकर देखो तो एक है; अन्यथा जब तक मैं, तू, जीव, जगत इत्यादि नाना प्रकार के ज्ञान शेष हैं तब तक अनेक हैं!" अस्तु—

अन्य स्थानों के ही समान काशी में भी संसारासक्त लोग हैं यह देखकर श्रीरामकृष्ण को क्लेश होता था। तथापि वहां उन्हें अनेक अद्भुत दर्शन हुए और शिव महिमा और काशी माहात्म्य के सम्बन्ध में उनकी धारणा दृढ़ हो गई, नौका में बैठकर वाराणसी में प्रवेश करने के समय से ही भावावेश में श्रीरामकृष्ण को दिखने लगा था कि काशी सचमुच सोने की है; वहां पत्थर मिट्टी आदि सब सोने के ही हैं। प्राचीन काल से साधु संत महात्मा लोगों के हृदय के भीतर की कंचन तुल्य और अमूल्य भावराशियों की काशी में तह पर तह जमकर उनकी राशि बन गई है। वह ज्योतिर्मयी भावघन मूर्ति ही काशी का नित्य और सत्य स्वरूप है। बाह्यदृष्टि से दिखने वाला स्वरूप उसकी छाया मात्र है। भावावस्था में काशी को स्वर्णमयी देख चुकने के कारण बाल स्वभाव वाले सरल हृदय श्रीरामकृष्ण ऐसा सोचते थे कि काशी की सीमा के भीतर शौच आदि करने से स्वर्ण अपवित्र हो जावेगा। इस कारण उन्हें यह विधि काशी में करने में बड़ा संकोच होता था। स्वयं उनके मुंह से हमने सुना है कि इसी कारण उन्हें शौचादि विधि करने के लिये वाराणसी की सीमा के बाहर ले जाने के लिये मथुरबाबू ने पालकी का प्रबन्ध कर रखा था। कुछ दिनों तक श्रीरामकृष्ण वाराणसी की सीमा के बाहर जाकर यह विधि निपटाते थे। पर बाद में इस भाव की तीव्रता कम हो जाने पर सीमा के बाहर जाना उन्होंने बन्द कर दिया।

श्रीरामकृष्ण के ही मुँह से ऐसा सुना गया है कि काशी में रहते हुए उन्हें एक विशेष प्रकार का दर्शन हुआ था। मणिकर्णिका आदि पंचतीर्थों की यात्रा कोई २ नौका में बैठकर करते हैं। मथुरबाबू ने भी यह यात्रा श्रीरामकृष्ण को अपने साथ लेकर नौका द्वारा ही की। मणिकर्णिका के पास ही

काशी क्षेत्र की मुख्य स्मशान भूमि है। मथुरबाबू की नौका मणिकर्णिका घाट के सामने आई। उस समय सारा स्मशान चिताओं से भर गया था और वहां अनेक मृतकशरीर जल रहे थे। भावमय श्रीरामकृष्ण की दृष्टि सहज ही उस ओर गई और उसी समय वे नौका से बाहर की ओर दौड़ते हुए ही आकर नौका के बिल्कुल किनारे पर समाधिमग्न हो गये। अब वे नदी में गिरने ही वाले हैं यह समझकर मथुरबाबू का परगडा और नौका के मल्लाह उन्हें पकड़कर सम्हालने के लिये दौड़े पर ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं पड़ी। श्रीरामकृष्ण वहीं पर स्थिर खड़े रहे। उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलक रहा था और मंद हास्य की छटा भी फैली हुई थी। दौड़कर आये हुए लोग उस अपूर्व तेजःपुञ्ज मुखमण्डल को देखकर दूर अवाक् खड़े रह गये और उनके हृदय भक्तिभाव से भर गये। बहुत समय के पश्चात् श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी। तब नौका को मणिकर्णिका घाट में लगाकर सब लोग स्नान आदि करने लग गये।

कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण अपनी हाल की समाधि में देखे हुए दर्शन के सम्बन्ध में मथुरबाबू आदि को बताने लगे। वे बोले–" मुझे ऐसा दिखाई दिया कि एक भूरे रंग की जटाओं वाला श्वेत वर्ण का ऊँचा और भव्य पुरुष अत्यन्त शान्त और गंभीर चाल से स्मशान की हर एक चिता के पास जाता है और उस पर के मृतक शरीर को कुछ ऊपर उठाकर उसके कान में प्रणव मन्त्र का उच्चारण करता है। स्वयं सर्व शक्तिमयी श्री जगदम्बा भी महाकाली के रूप में चिता पर के उस जीव के पास दूसरी ओर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार बन्धनों को तोड़कर, मोक्ष (निर्वाण पद) का द्वार खोलकर, अपने हाथों से अखण्ड के घर में उसका प्रवेश करा रही हैं। इस प्रकार अनेक जन्मों की योग तपस्या से जो अद्वैतानुभव का भूमानन्द जीव को प्राप्त हुआ करता है वही काशी में देह त्यागने वाले प्रत्येक जीव को देकर श्री विश्वनाथ उसे कृतार्थ कर रहे हैं।"

मथुरबाबू के साथ जो शास्त्रज्ञ पण्डित थे वे श्रीरामकृष्ण के इस अद्भुत दर्शन का वृत्तान्त सुनकर कहने लगे—" काशी खण्ड में केवल इतना ही बताया

गया है कि काशी में मृत्यु होने पर श्री विश्वनाथ उस जीव को निर्वाण पदवी प्राप्त करा देते हैं। परन्तु वह किस तरह प्राप्त होती है इसका वर्णन कहीं नहीं है। आपके इस दर्शन से वह समस्या हल हो गई। आपके दर्शन और साक्षात्कार शास्त्रों के भी आगे बढ़ गये हैं।"

हृदय कहता था कि काशी में भैरवी ब्राह्मणी और उनकी पुनः भेंट हुई और जब तक वे काशी में रहे तब तक उसके यहां सदा आया जाया करते थे। काशी में "चौंसठ योगिनी" नामक गली में "मोक्षदा" नाम की एक स्त्री के यहां वह ब्राह्मणी रहती थी। मोक्षदा की ईश्वर भक्ति देखकर श्रीरामकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ। ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण के साथ वृन्दावन यात्रा के लिये गई और श्रीरामकृष्ण के कहने से वहीं रहने लगी। वृन्दावन से श्रीरामकृष्ण के लौट आनेके बाद थोड़े ही दिनों में वृन्दावन में ब्राह्मणी का देहान्त हो गया। अस्तु—

काशी में ५,७ दिन रहकर ये लोग प्रयाग गये और वहां तीन दिन रहे। मथुर आदि ने वहां यथाविधि क्षौर कराया पर श्रीरामकृष्ण ने नहीं कराया। वे बोले—"मुझे क्षौर करने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।" प्रयाग से ये लोग पुनः काशी आये और वहां १५ दिन रहकर श्री वृन्दावन की यात्रा के लिये रवाना हुए।

वृन्दावन में निधुवन के समीप एक मकान में ये लोग उतरे। यहां भी मथुरबाबू काशी के समान ही बड़े ठाठबाट और ऐश्वर्य के साथ रहते थे। यहां रहते समय सभी लोगों के साथ उन्होंने सब देवस्थानों का दर्शन किया। हर एक स्थान में मूर्ति के सामने उन्होंने मोहर भेंट की। निधुवन के सिवाय यहां पर श्रीरामकृष्ण ने राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड और गोवर्धन पर्वत का दर्शन किया। गोवर्धन पर्वत पर तो वे भावाविष्ट हो चढ़ गये। वृन्दावन में रहते समय भी किसी साधक या भक्त का नाम सुनते ही वे उसके दर्शन के लिये पहुँच जाते थे। श्रीरामकृष्ण के लिये देव दर्शन या साधु सन्तों के दर्शन के लिये जाने के लिये मथुरबाबू ने पालकी की व्यवस्था कर दी थी। हृदय सदा साथ रहता ही था। देवमूर्ति के सामने चढ़ाने के लिये और रास्ते में भिक्षार्थियों को दान देने के

लिये पालकी में एक ओर एक कपड़ा बिछाकर उस पर मथुरबाबू रुपये, अठन्नी, चौअन्नी, दोअन्नी की ढेरियाँ रख दिया करते थे। परन्तु इन सब स्थानों में जाते समय श्रीरामकृष्ण भावावेश में इतने विह्वल हो जाया करते थे कि उन ढेरियों में से एक २ सिक्का उठाकर अलग २ दान करना उनके लिये असम्भव हो जाता था। परिणाम यह होता था कि भिखारियों की भीड़ जमा हो जाती थी और वे कपड़े की एक छोर खींचकर सभी सिक्के नीचे गिरा देते थे।

बांके बिहारी श्रीकृष्ण के दर्शन करते समय श्रीरामकृष्ण को अद्भुत भावावेश हो आया और वे एकाएक मूर्ति को आलिंगन करने के लिये दौड़ पड़े। वैसे ही एक दिन सन्ध्या समय गोपों के बालक जंगल से गाय चराकर लौट रहे थे। उसी झुण्ड में श्रीरामकृष्ण को गोपालकृष्ण का दर्शन हुआ और वे प्रेम से तन्मय होकर गहरी समाधि में मग्न हो गये। वृन्दावन की अपेक्षा उन्हें व्रज अधिक प्रिय लगा और वहां उन्हें श्रीकृष्ण और राधा के अनेक रूपों का दर्शन हुआ।

व्रज में रहते समय उन्होंने अनेक वैराग्य सम्पन्न साधकों को छोटी २ कुटियों के दरवाज़ों की ओर पीठ करके एकाग्र चित्त होकर जप-ध्यान में निमग्न रहते हुए देखा। व्रज का स्वाभाविक सृष्टि सौन्दर्य, फलफूलों से सुशोभित छोटा सा गोवर्धनगिरि, वन में निःसंकोच स्वैर संचार करने वाले मयूर और मृग, जपध्यानादि में निमग्न रहने वाले साधु सन्त, और सरल स्वभाव के व्रज-वासियों को देखकर वे व्रज पर बहुत प्यार करने लगे। इतने पर भी तपस्विनी गंगा माता के दर्शन और उसका सत्संग प्राप्त हो जाने के कारण उन्हें यही इच्छा होने लगी कि अब यहां से अन्यत्र न जाकर आयु के बचे हुए दिन यहीं बिताने चाहिये।

गंगा माता की आयु उस समय लगभग ६० वर्ष की रही होगी। श्री राधाकृष्ण के प्रति उसके अपार प्रेम और उसकी अलौकिक भक्ति को देख-कर लोगों की यही धारणा होती थी कि यह राधा की प्रधान सखी ललिता ही जीवों को भक्तिप्रेम की शिक्षा देने के लिये गंगा माता का रूप लेकर इस संसार

में अवतीर्ण हुई है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि "मुझे देखते ही उसने पहिचान लिया कि इसके शरीर में श्रीमती राधा के समान ही महाभाव के लक्षण हैं और इसी कारण उसने मुझे राधा का ही अवतार मानकर "दुलाली" कहकर पुकारा।" इस तरह दुलाली के सहज ही दर्शन हो जाने के कारण गंगा माता अपने को अत्यन्त धन्य मानने लगी और समझने लगी कि आज उसे इतने दिनों के प्रेम और भक्ति का फल प्राप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण भी उसे देखते ही उसके साथ बिल्कुल परिचित मनुष्य का सा व्यवहार करने लगे और अन्य सभी बातों को भूलकर उसी के आश्रम में उसके सत्संग में रहने लगे। दोनों को ही आपस में इतना आनन्द हुआ कि मथुरबाबू आदि को डर लगने लगा कि कहीं अब श्रीरामकृष्ण शायद यहीं स्थायी रूप से न रह जाँय और अपने साथ दक्षिणेश्वर न लौटें। परन्तु अन्त में श्रीरामकृष्ण की मातृभक्ति की ही जीत हुई और उनका गंगा माता के पास ही रहने का विचार बदल गया। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "व्रज में रहते समय सभी बातों का पूर्ण विस्मरण हो गया था। इच्छा यही होती थी कि यहां से वापस जाना ही नहीं चाहिये। पर कुछ दिनों में माता की याद आई और मन में ऐसा लगने लगा की यदि मैं यहां रह जाऊंगा तो माता को बड़ा दुःख होगा, और इस वृद्धावस्था में उसकी सेवा शुश्रूषा भी कौन करेगा? मन में यह विचार आते ही मुझ से वहां नहीं रहा गया।"

सचमुच ही, विचार करके देखने में, इस महापुरुष की सभी बातें बड़ी विलक्षण मालूम पड़ती हैं और परस्पर विरोधी सद्गुणों का उनमें एक ही स्थान में संमिश्रण देखकर मन आश्चर्य चकित हो जाता है। यही देखो न! उन्होंने विवाह तो किया पर गृहस्थी नहीं की। अपनी पत्नी का त्याग भी नहीं किया और उससे कभी शारीरिक सम्बन्ध भी नहीं रखा। ईश्वर प्राप्ति के लिये सर्वस्व का त्याग किया, पर मातृ सम्बन्धी और पत्नी सम्बन्धी कर्तव्य को कभी भी नहीं भुलाया। अद्वैतज्ञान के अत्युच्च शिखर पर आरोहण करके सदैव वहां वास करते हुए भी ईश्वर के साथ अपने भक्त के (या अपत्य के) प्रेममय सम्बन्ध को कभी भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार की कितनी ही बातें बताई जा सकती हैं। अपनी माता के साथ उनका ऐसा ही अलौकिक सम्बन्ध था। उनकी वृद्धा माता अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्हीं के पास दक्षिणेश्वर में रहती थी और श्रीरामकृष्ण

उसकी सब प्रकार की सेवा अपने ही हाथों से करते हुए अपने को धन्य समझते थे। बाद में जब उनकी परम पूज्य माता का स्वर्गवास हो गया तब उन्हें इतना दुःख हुआ और वे रोते रोते इतने व्याकुल हो गये कि ऐसा शोक शायद ही कोई करता हो। इतना दुःख तो उन्हें हुआ पर वे अपना सन्यासी होना कभी नहीं भूले। सन्यासी होने के कारण मैं अपनी माता का और्ध्वदेहिक कृत्य और श्राद्ध आदि करने का अधिकारी नहीं हूं ऐसा समझ उन्होंने वह सब कार्य अपने भतीजे रामलाल के द्वारा करवाया और स्वयं एक ओर बैठकर माता के लिये रो २ कर उसके ऋण से थोड़े बहुत मुक्त हुए। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "संसार में पिता और माता ये ही परमगुरु हैं; जीवन भर उनकी सेवा करनी चाहिये और उनकी मृत्यु के बाद उनका श्राद्ध आदि करना चाहिये। जो दरिद्र हो और श्राद्ध भी करने की शक्ति जिसे न हो वह उनका स्मरण करके कम से कम आँसू तो गिरावे। ऐसा करने से ही मनुष्य उनके ऋण से मुक्त हो जाता है। माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिये—ईश्वर प्राप्ति के लिये ही उल्लंघन करने में कोई हर्ज नहीं और दोष नहीं लगता। उदाहरणार्थ प्रल्हाद ने पिता की आज्ञा होने पर भी श्रीकृष्ण का नामस्मरण करना नहीं छोड़ा अथवा ध्रुव माता के "नहीं नहीं" कहते रहने पर भी तपस्या करने के लिये वन में चला गया। ईश्वर के लिये ही उन्होंने माता पिता की आज्ञा को नहीं माना इसी कारण उन्हें आज्ञा भंग करने का दोष नहीं लगा। अस्तु—

बड़े कष्ट से गंगा माता से विदा लेकर श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ वापस हुए। वृन्दावन में रहते समय श्रीरामकृष्ण को सितार सुनने की बड़ी इच्छा हुई पर वहां कोई प्रसिद्ध सितार बजाने वाला न रहने के कारण उन्हें वहां सुनने को नहीं मिला। लौटकर काशी आने पर पुनः उन्हें वही इच्छा हुई। मदनपुरा मोहल्ले में श्रीयुत महेशचंद्र सरकार नामक सज्जन सितार बहुत उत्तम बजाते हैं ऐसा विदित होने पर वे स्वयं ही उनके घर गये और सितार बजाकर सुनाने के लिये उनसे प्रार्थना की। महेशबाबू बड़ी खुशी से राजी हो गये और उन्हें उस दिन बड़ी देर तक उन्होंने सितार सुनाया। महेशबाबू का अंतिम वादन शुरू होते ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये। कुछ समय के बाद वे अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर "माता, मुझे होश में ला दे, मुझे सितार [illegible] रह सुनने

दे " इस प्रकार माता की प्रार्थना करते दिखाई दिए। तत्पश्चात् वे अच्छी तरह होश में आ गये और बड़े आनन्द से सितार के मधुर बोल सुनते हुए और बीच २ में सितार के सुर में अपना सुर मिलाकर गाते हुए वहां बहुत समय तक बैठे रहे। सन्ध्या के पांच बजे से रात्रि के आठ बजे तक इस तरह बड़े आनन्द से सितार सुनकर महेशबाबू के आग्रह से वहीं कुछ जलपान करके श्रीरामकृष्ण अपने घर वापस आये। उस दिन से महेशबाबू ही श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये रोज़ आकर उन्हें सितार बजाकर सुनाया करते थे। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि " सितार बजाते समय महेशबाबू अपनी देह की सुधि भी भूल जाते थे। "

काशी में १५ दिन व्यतीत करने के बाद मथुरबाबू को गया क्षेत्र की यात्रा करने की इच्छा हुई। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने वहां जाने से इन्कार कर दिया। इसलिये मथुरबाबू ने भी अपना वह विचार बदल दिया। श्रीरामकृष्ण ही कहते थे कि " गया में ही मेरे पिता से स्वप्न में श्री गदाधर ने कहा था कि मैं तेरा पुत्र होकर जन्म लूंगा। इसी कारण मेरे पिता ने मेरा नाम ' गदाधर ' रखा। गया में जाकर श्री गदाधर के दर्शन से मैं शायद इतना बेहोश और प्रेमोन्मत्त हो जाऊँ कि गदाधर के साथ चिरकाल तक एकरूप होकर रहने की इच्छा हो जाय और मैं चिरसमाधि मग्न हो जाऊँ ऐसा मन में आने के कारण मैं मथुरबाबू के साथ गया जाने के लिये राज़ी नहीं हुआ। " यह बात श्रीरामकृष्ण ने अपने किसी २ शिष्य से कही थी। श्रीरामकृष्ण की यह दृढ़ भावना थी कि " पूर्वकाल में जो श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीगौराङ्ग आदि रूपों से अवतीर्ण हुआ था वही अब इस शरीर का आश्रय लेकर पुनः अवतीर्ण हुआ है। " इसी कारण वे अपने वर्तमान शरीर और मन के उत्पत्तिस्थान श्रीक्षेत्र गया में जाने में, और जहाँ २ अन्य अवतारी पुरुषों ने अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया है, ऐहिक यात्रा समाप्त की है, उन २ क्षेत्रों के दर्शन करने का विचार करने में उनके मन में एक विचित्र प्रकार का संकोच उत्पन्न होता था। श्रीरामकृष्ण कहते थे–" ऐसे स्थानों में जाने से मुझे ऐसी गहरी समाधि लग जावेगी कि वह किसी भी उपाय से नहीं उतरेगी और ऐसा होने पर शरीर का टिकना भी असम्भव हो जावेगा। " ऐसा विलक्षण

संकोच उन्हें स्वयं अपने ही सम्बन्ध में उत्पन्न होता था सो नहीं। अपने भक्तों के सम्बन्ध में भी उन्हें यही आशंका हुआ करती थी। अपना भक्त अमुक देवता के अंश से हुआ है यह उन्हें दिव्य दृष्टि द्वारा मालूम हो जाने पर वे उसे उस देवता की लीला-भूमि के दर्शन के लिये जाने से रोकते थे। इस विलक्षण संकोच को क्या कहा जावे? इसे भय भी नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्मज्ञ सिद्ध अवतारी पुरुष को भय कैसे हो सकता है और किसका हो सकता है? सर्व चराचर में एक ही ब्रह्म व्याप्त हो रहा है, उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं इस बात का जिसने साक्षात् अनुभव कर लिया है उसे किसका भय हो सकता है? अन्य लोगों के समान जीते रहने की इच्छा भी उस संकोच को नहीं कह सकते क्योंकि लोगों के मन में जो जीने की इच्छा रहती है वह स्वार्थ के लिये या सुखोपभोग के लिये ही हुआ करती है। परन्तु जिनके अन्तःकरण में स्वार्थ का नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता उनके सम्बन्ध में ऐसा नहीं कह सकते। तब इस संकोच को क्या कहा जावे? और इसकी कल्पना भी दूसरों को किस तरह हो? हमारे मन में जो भाव और जो कल्पना तरंग उत्पन्न होते हैं उन्हीं को व्यक्त करने योग्य शब्द समूह हमें मिल सकते हैं। श्रीरामकृष्ण के समान महापुरुष के मन के अत्युच्च दिव्य भाव को व्यक्त करने योग्य शब्द भी हमें कहां मिलें? इसीलिये इन सब विषयों के सम्बन्ध में जो श्रीरामकृष्ण कहा करते थे उसी को श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनकर इन सब उच्च भावों को अपनी कल्पना द्वारा समझने के लिये यथा शक्ति प्रयत्न करने के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता।

ऊपर बता चुके हैं कि गया जाने के लिये श्रीरामकृष्ण के इन्कार करने पर मथुरबाबू ने भी वहां जाने का विचार त्याग दिया। सब लोग वहां से वैद्यनाथ जाकर कलकत्ता लौट आये।

श्रीरामकृष्ण वृन्दावन से राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की मिट्टी अपने साथ लाए थे। उसमें से कुछ पंचवटी के नीचे और बाकी अपनी साधन कुटीर के चारों ओर फैलाकर वे बोले, "आज से यह स्थान वृन्दावन के समान ही पवित्र होगा।" तदनन्तर थोड़े ही दिनों में उन्होंने मथुरबाबू से कहकर

उससे कई स्थानों के सन्त, महन्त, साधु, भक्त, आदि को बुलवाकर पंचवटी के नीचे एक महोत्सव किया। उस अवसर पर मथुरबाबू ने प्रत्येक को १) से लगाकर १६) तक दक्षिणा दी।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि इस सम्पूर्ण यात्रा में मथुरबाबू ने कुल मिलाकर एक लाख रुपये से अधिक ख़र्च किया।

काशी और वृन्दावन के सिवाय श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ एक बार श्री चैतन्य देव के जन्म स्थान नवद्वीप को भी गये थे। श्री चैतन्य देव को श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में से बहुत से लोग अवतार नहीं मानते थे। इतना ही नहीं वे लोग "वैष्णव" शब्द का अर्थ "दीन और दुर्बल लोग" समझा करते थे। श्री चैतन्य देव के अवतारीपन के सम्बन्ध में उन्होंने श्रीरामकृष्ण से भी प्रश्न पूछने में कमी नहीं की। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनके प्रश्न का उत्तर दिया। वे बोले—"क्या कहूं रे भाई! कुछ दिनों तक बारम्बार मुझे भी यही मालूम पड़ता था कि पुराण में, भागवत में कहीं "चैतन्य" का नाम भी नहीं आया है और "चैतन्य" को कहते हैं 'अवतार'? यह कैसी बात है? कुछ अनाप शनाप वर्णन करके 'तिल का ताड़' बना डाला होगा। किसी तरह भी चैतन्य का अवतार होना निश्चित नहीं किया जा सका। मथुरबाबू के साथ मैं नवद्वीप गया और मेरे मन में आया कि यदि सचमुच चैतन्य अवतार हैं तो वहां कुछ न कुछ साक्षात्कार अवश्य होगा—और तब तो आप ही आप सब स्पष्ट हो जावेगा। इस प्रकार का कोई साक्षात्कार हो इस उद्देश से इधर-उधर, बड़े महन्त के यहां, छोटे महन्त के घर, इस देवालय में उस देवालय में—सारे नवद्वीप में मारा २ फिरता रहा पर कहीं भी साक्षात्कार का नाम नहीं हुआ। जहां देखो वहां अपने हाथ ऊपर उठाकर नाचते हुए चैतन्य की काष्ठमूर्ति ही दिखाई देती थी! यह सब देखकर मेरे प्राण व्याकुल हो उठे और मैं सोचने लगा कि यहां मैं आया ही क्यों? तदनन्तर अब वहां से रवाना होने की इच्छा से मैं नौका पर बैठकर जाने ही वाला था कि मुझे एक अद्भुत दर्शन हुआ! दो सुन्दर बालक—उनका रूप इतना सुन्दर कि पहिले कभी देखने में नहीं आया था—तप्त स्वर्ण के समान रंग और कान्तिवाले—वय में १३-१४ वर्ष

के—मुखमण्डल के चारों ओर तेजोवलय—हाथ ऊपर उठाकर मेरी ओर देखकर हँसते २, आकाशमार्ग से मेरी ओर बड़े वेग से आ रहे हैं! यह दृश्य देखते ही "देखो मैं आया, मैं आया" इस प्रकार मैं एकदम चिल्ला उठा! पर इतने में ही वे दोनों बालक मेरे पास आकर (अपनी ही ओर अंगुली दिखाकर) इस शरीर में अंतर्धान हो गये और मैं एकदम समाधिस्थ हो गया। नदी में ही गिर पड़ता पर हृदू साथ में था; उसने पकड़कर खींच लिया। इसी तरह और भी कुछ कुछ दिखलाकर मुझे विश्वास दिलाया कि चैतन्य सचमुच अवतार हैं।"

नवद्वीप के समीप की नदी के किनारे की रेतीली ज़मीन पर श्रीरामकृष्ण को जितना भावावेश हुआ उतना खास नवद्वीप में नहीं हुआ। इसका कारण पूछने पर वे कहने लगे—"श्री चैतन्य देव का पुराना नवद्वीप गंगा में डूब गया है और उसका स्थान उस रेतीली जगह के नीचे ही होना चाहिये इसीलिये वहीं पर मुझे भावावेश हुआ।"

काशी, वृन्दावन और नवद्वीप के सिवाय मथुरबाबू के साथ श्रीरामकृष्ण एक बार खुलना के प्रख्यात सत्पुरुष भगवानदास बाबा जी से भेंट करने गये थे (सन् १८७१)। श्री चैतन्य देव के चरणों से पवित्र हुए अनेक स्थानों में से खुलना भी एक है। वहां के १०८ शिव मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

बाबा भगवानदास जी की आयु उस समय ८० वर्ष से अधिक रही होगी और उनके तीव्र वैराग्य और अलौकिक भगवद्भक्ति की ख्याति सारे बंगाल भर में थी। रातदिन एक ही स्थान में बैठकर जप, ध्यान, धारणा आदि करते रहने के कारण वृद्धावस्था में उनके दोनों पैर बिल्कुल कमज़ोर और अपंग हो गये थे। तथापि ८० वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर भी और शरीर के इस प्रकार परावलंबी हो जाने के कारण उठने की भी शक्ति देह में न रहने पर भी, इस वृद्ध साधु पुरुष के हरिनाम-स्मरण में अदम्य उत्साह, ईश्वर भक्ति और ईश्वर प्रेम को देखकर किसी तरुण युवक को लज्जा आने लगती थी। नामस्मरण करते २ वे अपनी देह तक की सुधि भूल जाते थे और उनकी आँखों से सतत अश्रुधारा बहती

रहती थी। निर्जीव समान वैष्णव समाज में उनके कारण सजीवता आ गई थी और बाबा जी के आदर्श उदाहरण और उपदेश के कारण अनेक लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त होने लगे थे। उनके दर्शन के लिये जाने वालों पर उनके तीव्र वैराग्य, तपस्या, ईश्वर प्रेम, पवित्रता आदि अनेक सद्गुणों का बहुत परिणाम होता था और उनके जीवन की दिशा बदल जाती थी। महाप्रभु श्री चैतन्य देव के प्रेम धर्म सम्बन्धी किसी विषय पर वाद उपस्थित होने पर सब लोग बाबा जी भगवानदास के मत को ग्राह्य मानकर उस वाद का निर्णय करते थे। बाबा जी केवल अपने साधन भजन में ही नहीं लगे रहते थे।' वरन् वे वैष्णव समाज में कहां क्या हो रहा है इसका पता रखते थे और उस समाज की उन्नति का मार्ग क्या है, श्री चैतन्य देव के प्रेमधर्म और उनके अलौकिक चरित्र की ओर लोगों का ध्यान कैसे आकर्षित हो—इत्यादि बातों की भी चिन्ता सदा किया करते थे। ढोंगी साधुओं के आचरण के सम्बन्ध की सभी बातें लोग उनके पास जाकर बताया करते थे और इस विषय में उनकी राय के अनुसार लोग निःशंक होकर उपाय किया करते थे। इस कारण बाबा जी का सारे वैष्णव समाज पर एक प्रकार का दबदबा था और ढोंगी, स्वार्थपरायण साधु लोग उनसे बहुत डरते थे।

श्रीरामकृष्ण ने जिस समय अपनी तपस्या आरम्भ की थी लगभग उसी समय उत्तर हिन्दुस्थान के अनेक स्थानों में धार्मिक आन्दोलन शुरू हो रहा था। कलकत्ता और उसके आसपास हरिसभा और ब्रह्मसमाज की हलचल, संयुक्त-प्रान्त और पंजाब की ओर स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक धर्म का प्रचार, बंगाल में वेदान्त, कर्ताभजा-सम्प्रदाय, राधास्वामी-सम्प्रदाय आदि के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे। उन सब का हमारे वर्तमान विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल कलकत्ते की कोलू टोला गली में सदा होने वाली एक हरिसभा में जो घटना हुई उसी का उल्लेख करना उचित है क्योंकि भगवानदास बाबा जी और श्रीरामकृष्ण की भेंट से उस घटना का सम्बन्ध है।

एक दिन कोलू टोला की हरिसभा का निमन्त्रण पाकर श्रीरामकृष्ण वहाँ गये थे। हृदय उनके साथ था। जब श्रीरामकृष्ण वहां पहुँचे तब पुराण की कथा

में बड़ा आनन्द आ रहा था और श्रोतागण सुनने में तल्लीन थे। उन्हीं के साथ एक ओर श्रीरामकृष्ण बैठ गये और पुराण सुनने लगे।

उस स्थान के लोग अपने को श्री चैतन्य देव के एकनिष्ठ भक्त समझा करते थे। इसी कारण वे लोग उनकी स्मृति सदैव जागृत रखने के लिये वहाँ एक अलग आसन बिछा दिया करते थे। उस आसन पर साक्षात् श्री चैतन्य देव विराजमान हैं इस भावना से सब लोग उसे मान देते थे, उसकी पूजा अर्चा करते थे, उसके सामने साष्टांग प्रणाम करते थे और उस आसन पर किसी को बैठने नहीं देते थे। प्रत्यक्ष श्री चैतन्य देव श्रवण कर रहे हैं ऐसा मानकर पौराणिक महाराज अपना पुराण सुनाया करते थे।

उस दिन पुराण सुनते २ श्रीरामकृष्ण एकाएक भावाविष्ट हो गये और उस भाव के उमङ्ग में ही झट उठकर एकदम उस आसन पर जाकर खड़े हो गये और वहाँ उन्हें खड़े २ ही गहरी समाधि लग गई। यह सब इतनी शीघ्रता के साथ हुआ कि तत्क्षण वह किसी के ध्यान में भी नहीं आया; परन्तु श्रीरामकृष्ण को उस आसन पर खड़े हुए देखकर सभा में सब ओर खलबली मच गई। सभी एक दूसरे की ओर देखने लगे। उस समाधि-अवस्था में ही श्रीरामकृष्ण के हाथ चैतन्य देव के समान ऊपर उठे हुए थे और उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलक रहा था। उनकी उस दिव्य तेजःपुञ्ज मूर्ति को देखने से उस सभा में उपस्थित किसी २ भक्त को तो वे साक्षात् चैतन्य देव ही दिखाई दिये। पौराणिक का पुराण बंद हो गया। श्रीरामकृष्ण उस आसन पर खड़े हो गये यह बात अच्छी हुई या बुरी—यही बात श्रोताओं की समझ में नहीं आती थी। श्रीरामकृष्ण के उस दिव्य तेज से सब लोग चकित हो गये और सभी को एक साथ अचानक स्फूर्ति आ जाने के कारण उन्होंने ज़ोर २ से जयजयकार करना और भजन गाना प्रारंभ कर दिया। बहुत समय में श्रीरामकृष्ण अधूरे होश में आये और वे भी उन्हीं के साथ नृत्य करते हुए भजन करने लगे और बीच २ में समाधिस्थ होने लगे। सभी को जोश आगया और वे लोग देहभान भूलकर उन्मत्त के समान ज़ोर २ से भजन करने लगे। इसी प्रकार बहुत देर तक भजन चलता रहा। किसी को भी किसी बात की सुधि नहीं थी। बहुत समय के बाद श्री

चैतन्य देव के नाम से जयजयकार होकर भजन समाप्त हुआ और थोड़ी ही देर में श्रीरामकृष्ण हृदय के साथ दक्षिणेश्वर को वापस आये।

श्रीरामकृष्ण के चले जाने के बाद जैसे कोई सोया हुआ मनुष्य जाग उठे उसी तरह ये लोग जागृत हुए और आज की घटना उचित थी कि अनुचित इसके सम्बन्ध में वाद विवाद होने लगा। श्रीरामकृष्ण की समाधि, उनका वह दिव्य तेजःपुञ्ज रूप और उनके अलौकिक नृत्य और भजन को देखकर कुछ लोग तो कहने लगे कि उनका चैतन्य देव का आसन ग्रहण करना अनुचित नहीं हुआ और कुछ लोग यह भी कहने लगे कि यह अनुचित हुआ। दोनों पक्षवालों में ज़ोर शोर से बहस हुई, पर उस दिन इस बात का कोई निर्णय नहीं हो सका।

क्रमशः यह वार्ता सब ओर फैल गई और सारे वैष्णव समाज में धूम मच गई। यह बात बाबा भगवानदास जी के कान में भी पहुँची और व्यर्थ ही कोई क्षुद्र मनुष्य श्री चैतन्य देव के आसन का अपमान करे और अपने भक्तिभाव का इस प्रकार ढोंग मचावे इस बात पर उन्हें बड़ा क्रोध आया। इतना ही नहीं क्रोध के वेग में उन्होंने उस ढोंगी मनुष्य के सम्बन्ध में कुवाक्ययुक्त उद्गार भी अपने मुख से निकालने में कमी नहीं की। पर श्रीरामकृष्ण को उस दिन की घटना से वैष्णव समाज में बड़ी हलचल उत्पन्न हो गई है इसके सिवाय और कुछ भी मालूम नहीं हुआ।

तत्पश्चात् थोड़े ही दिनों में श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ खुलना गये। प्रायः सूर्योदय के समय उनकी नौका घाट पर लगी। मथुरबाबू सामान आदि सम्भालने में लगे थे। इधर हृदय को साथ लेकर श्रीरामकृष्ण शहर देखने निकल पड़े और पता लगाते २ बाबा भगवानदास जी के आश्रम के समीप आ पहुँचे।

किसी अपरिचित व्यक्ति से भेंट करने का अवसर आ पड़ने पर पहले पहल बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण के मन में सचमुच भय होने लगता था। उनका यह स्वभाव हमने अपनी आँखों से देखा है। बाबा भगवानदास जी की भेंट के समय भी पहिले ऐसा ही हुआ। हृदय को सामने करके अपना सब शरीर

वस्त्र से ढांककर उन्होंने बाबा जी के आश्रम में प्रवेश किया। हृदय आगे आकर बाबा जी को प्रणाम करके बोला–" मेरे मामा बड़े भगवद्भक्त हैं; वे आप का दर्शन करने आये हैं।"

हृदय कहता था कि उनको प्रणाम करके मेरे बोलने के पूर्व ही बाबा जी कहने लगे–" आज आश्रम में किसी महापुरुष का आगमन हुआ है ऐसा भास हो रहा है।" ऐसा कहते हुए वे इधर उधर देखने लगे। पर वहां मेरे सिवाय और कोई नहीं दिखा। इससे वे अपने सामने के काम में ही लगे रहे। कुछ लोग एक वैष्णव साधु के दुराचार के सम्बन्ध में बाबा जी से सलाह कर रहे थे। बाबा जी भी उसकी खूब भर्त्सना करके " उसकी माला छीनकर उसे सम्प्रदाय में से निकाल दूंगा " इत्यादि कह रहे थे। इतने में ही श्रीरामकृष्ण वहां आ गये और बाबा जी को प्रणाम करके नम्रता पूर्वक एक ओर चुपचाप बैठ गये। सर्वांग वस्त्र से ढके रहने के कारण उनके चेहरे पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी। हृदय ने उनकी ओर अंगुली दिखलाते हुए कहा–" यही मेरे मामा हैं।" इतना परिचय पाने पर बाबा जी ने भी अन्य बातें बन्द कर दीं और वे श्रीरामकृष्ण से " कब आये ? कहां से आये ? " आदि कुशल प्रश्न करने लगे।

अपने साथ बोलते समय भी बाबा जी को माला फिराते देखकर चतुर हृदय ने उनसे पूछा—" बाबा जी, आप अभी तक माला क्यों लिये हुए हैं ? आप तो सिद्ध हो चुके हैं, आपको माला की क्या आवश्यकता है ? " बाबा जी ने नम्रता से उत्तर दिया—" स्वयं मुझको उसकी ऐसी अधिक आवश्यकता नहीं है पर लोगों के लिये माला रखनी पड़ती है; नहीं तो दूसरे लोग भी मेरी देखा-सीखी वैसा ही करने लग जावेंगे।"

सभी विषयों में हर समय एक बालक के समान श्री जगदम्बा पर ही अवलम्बित रहने की प्रकृति श्रीरामकृष्ण के मानो अस्थिचर्म में इतनी दृढ़ हो गई थी अर्थात् उनका श्री जगदम्बा पर निर्भर रहने का स्वभाव इतना प्रबल हो गया था कि अहंकार से स्वयं अपनी प्रेरणा से कोई कार्य करना तो दूर रहा अगर दूसरा कोई वैसा करता हो तो भी उनके अन्तःकरण में पीड़ा होती थी !

अपने अहंकार का उन्होंने इस हद्द तक नाश कर डाला था कि उनके मुँह से अपने सम्बन्ध में कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था कि " मैंने अमुक काम किया या करूंगा । " कभी " मैं " शब्द का प्रयोग होता भी हो तो वहां " मैं " शब्द का अर्थ " जगदम्बा का बालक " अथवा " मैं दास " ही रहा करता था । अपने सम्बन्ध में वे सदा " यहां का मत ", " यहां की अवस्था ", " इस देह की स्थिति " ऐसे ही शब्दों का उपयोग करते थे । उनका यह स्वभाव बिल्कुल अल्प समय तक भी उनके साथ रहने वाले मनुष्य के ध्यान में आ जाता था । किसी के " मैं करूंगा " आदि शब्दों को सुनकर श्रीरामकृष्ण को क्रुद्ध होते देख दर्शक को आश्चर्य होता था । वह मन में सोचता था कि " इस मनुष्य ने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि श्रीरामकृष्ण इस पर क्रुद्ध हो गये । " यहां भी यही हाल हुआ । श्रीरामकृष्ण के पहुँचते ही उन्हें बाबा जी के मुँह से— " उस साधू की माला छीनकर उसको वैष्णव सम्प्रदाय से निकाल दूँगा—" ये शब्द सुनाई दिये । थोड़े ही समय में फिर—" लोगों के लिये मैं माला नहीं छोड़ता " ये शब्द उनके कान में पड़े । " मैं निकाल दूंगा ", " मैं माला नहीं छोड़ता ", " मैं लोगों को सिखाऊँगा " इत्यादि बाबा जी के मुँह से " मै "— अहंकार सूचक शब्द निकलते सुनकर श्रीरामकृष्ण को क्रोध आया और उस क्रोध को वे हमारे समान असभ्यता के डर से छिपा नहीं सके । वे एकदम उठकर खड़े हो गये और बाबा जी की ओर देखकर बोले—" क्यों ? अब तक आपको इतना अहंकार है ? आप लोगों को सिखावेंगे ? आप निकाल देंगे ? लोगों को सिखाने वाले आप होते कौन हैं ? यह सारा संसार जिसका है उसके सिखाये बिना आप कौन सिखाने वाले होते हैं ? " ऐसा बोलते २ उनके शरीर पर का वस्त्र और पहिनी हुई धोती भी गिर पड़ी । मैं किससे क्या कह रहा हूं इसकी सुधि भी उन्हें नहीं रही । देखते २ भाव की प्रबलता के कारण उन्हें समाधि लग गई और उनके मुखमण्डल पर दिव्य तेज चमकने लगा । कहीं नीचे न गिर जाँय इस डर से उन्हें बचाने के लिये हृदय भी उनको पकड़े हुए खड़ा रहा ।

सिद्ध बाबा जी को आज तक सब कोई मान ही देते आ रहे थे । प्रत्युत्तर देने का या उनके दोष निकालने का साहस भी आज तक किसी ने नहीं किया

था। अतः श्रीरामकृष्ण को इस प्रकार बोलते सुनकर वे चकित हो गये। पर वे भी पहुँचे हुए पुरुष थे इसलिये क्रोध के वश न होकर वे चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर में उन्हें श्रीरामकृष्ण के बोलने का अर्थ समझ में आया और "मैं ऐसा करूंगा, मैं वैसा करूंगा" ऐसा कहना भी अहंकार है यह बात उन क ध्यान में आई। श्रीरामकृष्ण की अहंकारशून्यता देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी समाधि अवस्था और शरीर के लक्षण और दिव्य कान्ति को देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि ये कोई असामान्य महापुरुष हैं।

समाधि उतरने पर श्रीरामकृष्ण को बाबा जी की नम्रता देखकर बड़ा आनन्द हुआ। तब तो इन दोनों महापुरुषों की ईश्वर सम्बन्धी बातें शुरू हो गईं और उनका आनन्द सागर किस प्रकार उमड़ पड़ा वह वर्णन करना असम्भव। ईश्वर सम्बन्धी बातें करते समय श्रीरामकृष्ण की तन्मयता और बारम्बार आने वाले भावावेश और भजन के समय के उनके असीम आनन्द को प्रत्यक्ष देखकर बाबा जी श्रीरामकृष्ण को धन्य मानने लगे। "इतने दिनों तक महाभाव के शास्त्रीय विवेचन में ही मैं मग्न हो जाता था पर आज तो महाभाव के सर्व लक्षण जिनमें हैं ऐसे महापुरुष का दर्शन कर रहा हूं" यह सोचकर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ और श्रीरामकृष्ण के प्रति उनके मन में आदर और भक्ति उत्पन्न हुई। आगे चलकर बातें निकलते २ जब उन्हें यह पता लगा कि कोलू टोला के चैतन्य-आसन को भावावेश में ग्रहण करने वाले दक्षिणेश्वर के परमहंस ये ही है तब तो—"ऐसे महापुरुष के प्रति मैंने कैसे अनुचित शब्दों का प्रयोग कर डाला"— यह सोचकर उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ और उन्होंने बड़ी नम्रता से उसके बारे में श्रीरामकृष्ण से क्षमा मांगी।

इस प्रकार इन दोनों महापुरुषों की भेंट हुई। थोड़े ही समय के बाद बाबा जी से विदा लेकर श्रीरामकृष्ण हृदय के साथ वापस लौटे और मथुरबाबू के पास उन्होंने बाबा जी की उच्च आध्यात्मिक अवस्था की प्रशंसा की। उसे सुनकर मथुरबाबू भी बाबा जी के दर्शन के लिये गये और उनके आश्रम के देवताओं की नित्य पूजाअर्चा और वार्षिक महोत्सव के लिये उन्होंने कुछ वार्षिक वृत्ति बाँध दी।

४—हृदयराम का वृत्तान्त।

" तू मेरी सेवा ठीक तरह से करता जा। यही तेरे लिये पर्याप्त है। तुझे दूसरी तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है।"

—श्रीरामकृष्ण।

तीर्थयात्रा समाप्त करके मथुर आदि मण्डली के लौटने के थोड़े ही दिनों के बाद हृदयराम की पत्नी का स्वर्गवास हो गया (सन् १८६६)। उसके कारण कुछ समय तक उसका मन संसार से उचट सा गया था। पहिले बता चुके है कि हृदयराम भावुक नहीं था। इतने दिनों तक श्रीरामकृष्ण की सेवा करने और उनकी दिव्य संगति में रहने के कारण उसके मन में कभी २ पारमार्थिक विचार आ जाया करते थे पर वे स्थायी रूप से टिकते नहीं थे। गृहस्थी ठीक चलाते हुए हो सके तो परमार्थ साधन करना उसके जीवन का ध्येय था। इसीलिये अपनी आँखों के सामने श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक उन्नति शीघ्रतापूर्वक होते देखकर भी, वह मानो समुद्र में गिर पड़ने पर भी, सूखा का सूखा ही रह गया। अपने मामा के अपूर्व शक्तिविकास को देखकर वह सोचता था कि—"परमार्थ है क्या चीज़? मैं अपने मामा के पास अगर धरना देकर बैठूंगा तो वे मुझे सभी देवी देवताओं के दर्शन सहज ही में करा देवेंगे। इसलिये उसके विषय में अभी से मुझे व्यर्थ चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? पहिले संसार सुख भोग लूं तब फिर समय आने पर परमार्थ की ओर दृष्टि डालूंगा।" अब पत्नी का देहान्त हो जाने से उसे मालूम पड़ने लगा कि वह समय आ गया है। वह अब पहिले की अपेक्षा अधिक मन लगाकर और निष्ठापूर्वक श्री जगदम्बा की पूजा-अर्चा करने लगा, पहिनी हुई धोती और जनेऊ आदि को अलग रखकर बीच २ में ध्यान भी करने लगा और श्रीरामकृष्ण के पास धरना देकर बैठ गया कि "मुझे अपने समान सारे आध्यात्मिक अनुभव आपको प्राप्त करा देने चाहिये।"

श्रीरामकृष्ण ने इस पर उसे बहुत समझाया कि " तुझे ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, तू मेरी सेवा ठीक तरह से करता जा। इतना ही तेरे लिये बस है, तुझको दूसरी तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है। यदि तू और मैं दोनों ही रात दिन इसी प्रकार ध्यान धारणा में मग्न रहने लगेंगे तो फिर हम लोगों की और बातों की चिन्ता कौन करेगा? " पर हृदय किसी भी बात को सुनने के लिये तैयार नहीं था। तब श्रीरामकृष्ण बोले—" माता की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा; मेरी इच्छा से भला कहीं कुछ होता है? माता ने ही तो मेरी बुद्धि को पलट कर मेरी यह अवस्था कर दी है; उसकी इच्छा होगी तो वह तेरी भी वही अवस्था कर देगी। "

इसके कुछ दिनों के बाद पूजा और ध्यान करते समय हृदय को कुछ थोड़े बहुत अद्भुत दर्शन और बीच २ में अर्ध बाह्यदशा प्राप्त होने लगी। हृदय की ऐसी भावावस्था देखकर एक दिन मथुरबाबू श्रीरामकृष्ण से बोले—" बाबा, हृदय की यह कैसी अवस्था हो गई है? " श्रीरामकृष्ण बोले—" हृदय ढोंग नहीं कर रहा है; उसकी सचमुच वैसी अवस्था हो रही है—' मुझे दर्शन होने दे ' ऐसी प्रार्थना उसने माता से की; इसलिये उसे यह सब हो रहा है। ऐसा ही कुछ थोड़ा बहुत दिखाकर माता उसके मन को शीघ्र ही शान्त कर देगी। " मथुरबाबू बोले—" बाबा! कहां की माता और कहां और कुछ? यह सब आपका ही खेल है! आप ही ने हृदय की यह अवस्था की है और अब आप ही उसके मन को शान्त करें। हम दोनों शृंगी भृंगी के समान आपके चरणों के पास सदैव रहकर आपकी सेवा करने वाले हैं। हमें इस प्रकार की अवस्था से क्या मतलब है? " —यह सुनकर श्रीरामकृष्ण हँसने लगे।

इसके कुछ दिनों के बाद एक दिन रात्रि के समय श्रीरामकृष्ण उठकर पंचवटी की ओर जा रहे थे। उन्हें जाते देखकर हृदय भी उठा और श्रीरामकृष्ण का लोटा और रूमाल लेकर उनके पीछे २ चलने लगा। वह थोड़े ही क़दम चलकर गया होगा कि इतने में उसे एक अद्भुत दर्शन हुआ। उसे दिखाई दिया कि श्रीरामकृष्ण मनुष्य नहीं हैं, वे कोई दिव्य देहधारी पुरुष हैं, उनके तेज से सम्पूर्ण पंचवटी प्रकाश पूर्ण हो गई है और चलते समय उनके पैर पृथ्वी को स्पर्श

नहीं करते हैं। वे पृथ्वी से अलग ऊपर ही ऊपर अधर चले जा रहे हैं। शायद यह अपना दृष्टि भ्रम ही हो ऐसा सोचकर आँखों को मलकर हृदय ने फिर उस ओर देखा तब भी वही दृश्य दिखाई दिया। यह सब देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा—"मुझ में ऐसा कौनसा अन्तर हो गया है जिसके कारण मुझे यह विचित्र दृश्य दिखाई दे रहा है"—और स्वयं अपनी ओर देखने लगा। तब तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसे अपना शरीर भी ज्योतिर्मय दिखाई दिया और उसे पता लगा कि—"मैं भी दिव्य पुरुष हूं, साक्षात् ईश्वर की सेवा में मैं अपना समय व्यतीत कर रहा हूं, उनकी सेवा करने के लिये ही मेरा जन्म हुआ है, यथार्थ में वे और मैं एक ही हैं, केवल उनकी सेवा के लिये मुझे अलग शरीर धारण करना पड़ा!"—यह सब जानकर और अपने जीवन का यह रहस्य समझ में आने पर उसके आनन्द का पार नहीं रहा। वह संसार को भूल गया, अपने आप को भूल गया और अतिशय आनन्द के आवेश में बेहोश होकर एकाएक चिल्लाने लगा—"ओ रामकृष्ण! ओ रामकृष्ण! हम लोग तो मनुष्य नहीं हैं तब हम यहां आये क्यों हैं? चलो हम लोग देशदेशान्तर में पर्यटन करें और जीवों का उद्धार करें। तुम और हम एक ही हैं!" श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "इस प्रकार उसको चिल्लाते देखकर मैंने उससे कहा—'हृदू! अरे कितने ज़ोर से चिल्ला रहा है? तुझे हो क्या गया है? तेरा चिल्लाना सुनकर लोग दौड़ पड़ेंगे न?'—पर कौन सुनता है? उसने अपना चिल्लाना जारी ही रखा। तब तो मैं उसके पास दौड़ते २ गया और उसके वक्षःस्थल पर हाथ रखकर बोला "माता! माता! इस मूर्ख को जड़ बना दे।"

हृदय कहता था—"उनके मेरी छाती को स्पर्श करते हुए ऐसा कहते ही मेरी वह दिव्य दृष्टि और वह सारा आनन्द लुप्त हो गया और मैं पुनः ज्यों का त्यों बन गया। मुझको बड़ा दुःख हुआ और मैं रोते २ बोला—"मामा! आप ने यह क्या किया? मुझे इस प्रकार जड़ क्यों बना दिया? अब मुझे वह दिव्य आनन्द पुनः कहाँ मिलेगा?" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले—"मैंने तुझको सब दिन के लिये जड़ होने को थोड़े ही कहा है? मैंने तुझको अभी चुप बैठालने के लिये ही ऐसा किया है। ज़रा कहीं थोड़ा सा दर्शन पाया कि लगा तू ज़ोर २ से चिल्लाने। इसीलिये मुझे वैसा करना पड़ा! मुझको तो

देख। चौबीसों घन्टे मैं कितनी अद्भुत बातें देखता रहता हूं। पर क्या मैंने कभी भी इस तरह हल्ला मचाया है ? तेरे लिये ऐसे दर्शन करने का समय अभी नहीं आया है। अभी शान्त हो, समय आने पर तू बहुत से दर्शन प्राप्त कर सकेगा।"

श्रीरामकृष्ण के ये वाक्य सुनकर हृदय चुप बैठ गया, पर इस बात से उसके मन में बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा कि चाहे जो हो पर परसों के समान साक्षात्कार एक बार और करना चाहिये। अब इसके बारे में श्रीरामकृष्ण से बोलने के लिये कोई गुंजायश नहीं थी, इसलिये उनको बिना बताये ही वह पुनः प्रतिदिन खूब जप और ध्यान करने लगा! वह रात को उठता था और पंचवटी के नीचे श्रीरामकृष्ण के जप ध्यान करने की जगह में जाकर जप ध्यान करता था! एक दिन वह इसी तरह वहां बैठकर ध्यान कर रहा था! रात का समय था। घोर अंधकार फैला हुआ था। श्रीरामकृष्ण को पंचवटी की ओर जाने की इच्छा हुई और वे वहां जाने के लिये निकले। वे पंचवटी तक पहुँचे भी नहीं थे कि "मामा जी! दौड़िये, दौड़िये! मैं जलकर मर रहा हूं" ये शब्द उनके कानों में पड़े! हृदय की आवाज़ है यह जानकर वे जल्दी २ वहां पहुँचे और बोले—"डरो मत, मैं यहां आगया हूं। क्यों तुझे क्या हो गया?" पीड़ा के कारण चिल्लाते हुए हृदय बोला—"मामा! मैं यहां ध्यान करने बैठा था कि एकाएक शरीर में इतनी जलन होने लगी मानो किसी ने उस पर अंगार रख दीया हो! यह वेदना मुझ से नहीं सही जाती!" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले, "रोओ मत, अभी तक़लीफ़ दूर हो जावेगी! तू क्यों ऐसा करता था भला? मैं तुझको एक बार बता चुका न, कि तुझको इन सब बातों की जरूरत नहीं है, तू केवल मेरी सेवा करता जा,—उतना ही तेरे लिये बहुत है।" हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्ण के हस्तस्पर्श से उसकी सारी वेदना सचमुच दूर हो गई। श्रीरामकृष्ण के कहने के अनुसार ही चलने में अपनी भलाई है यह जानकर वह इस के बाद कभी भी पंचवटी के नीचे ध्यान आदि करने के लिये नहीं गया।

उसी साल के आश्विन मास में हृदय को श्री दुर्गा पूजा उत्सव करने की बड़ी इच्छा हुई। मथुरबाबू ने द्रव्य से उसकी सहायता की परन्तु श्रीरामकृष्ण

को अपने ही घर रखूंगा ऐसा उन्होंने उससे कह दिया। हृदय की ऐसी इच्छा थी कि उत्सव वह अपने गांव में करे और वहां अपने साथ अपने मामा को भी ले चले। जब उसने यह देखा कि मथुरबाबू उन्हें नहीं छोड़ते तो वह बड़ा हतोत्साह हो गया। हृदय कहता था—" मुझको ऐसे उदास चित्त से गांव के लिये रवाना होते देखकर श्रीरामकृष्ण मुझे समझाते हुए कहने लगे—'हृदू! तू इस तरह बुरा मत मान, मैं रोज़ तेरे यहां तेरी पूजा देखने के लिये आया करूंगा तब तो ठीक होगा न? तू अपने मन के अनुसार पूजा करते जाना; व्यर्थ सारे दिन भर उपवास मत करना; बीच में दोपहर के समय थोड़ा फलाहार कर लेना'—ऐसा कहकर उन्होंने पूजा के लिये जो प्रबन्ध करना होगा वह सब बता दिया, तब मैं बड़े हर्ष के साथ अपने गांव गया।"

गांव में जाने के बाद उसने श्रीरामकृष्ण के कहने के अनुसार सभी तैयारी कर ली और आश्विन शुक्ल षष्ठी के दिन पूजा शुरू कर दी। सप्तमी के दिन रात्रि को पूजा आदि करके आरती करते समय उसे दिखाई दिया कि ज्योतिर्मय शरीर धारण करके श्रीरामकृष्ण देवी के पीछे भावावेश में खड़े हैं! श्रीरामकृष्ण को देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और अपनी पूजा को आज सार्थक जानकर वह अपने को धन्य मानने लगा।

पूजा के दिन बीतने के बाद दक्षिणेश्वर आकर उसने सब समाचार श्रीरामकृष्ण से बताया। तब श्रीरामकृष्ण बोले—" उस दिन रात को आरती के समय तेरी पूजा देखने की मुझे सचमुच ही उत्कण्ठा हुई और मैं भावाविष्ट हो गया। उस समय मुझे ऐसा दिखा कि ज्योतिर्मय शरीर धारण करके मैं ज्योतिर्मय मार्ग से तेरे घर गया हूं और तेरी पूजा देख रहा हूं!"

श्रीरामकृष्ण एक बार भावावेश में हृदय से कहने लगे—" तू तीन वर्ष तक दुर्गा पूजा उत्सव करेगा"—और यथार्थ में बात वैसी ही हुई। श्रीरामकृष्ण के कहने की ओर ध्यान न देकर चौथे वर्ष जब वह पूजा की तैयारी करने लगा तब उसमें इतने विघ्न आये कि अन्त में उसे वह कार्य छोड़ देना पड़ा। प्रथम वर्ष के उत्सव की समाप्ति के बाद उसने अपना दूसरा विवाह किया (१८६९-७०)

और दक्षिणेश्वर में आकर अपना काम और श्रीरामकृष्ण की सेवा उसने पुनः पूर्ववत् प्रारम्भ कर दी।

हृदय के इसके बाद के जीवन में मनुष्य के अधःपतन का एक बड़ा विचित्र उदाहरण पाया जाता है। महामाया का प्रभाव बड़ा अद्भुत है। श्रीरामकृष्ण की सभी साधनाएँ उसकी आँखों के सामने हुईं। उनका अद्भुत शक्ति-विकास भी उसके देखते २ हुआ, उनके और अपने जीवन के रहस्य को भी वह जान गया था, पर वही हृदय समुद्र में रहकर भी सूखा बना रहा। उसकी भावुकता नहीं बढ़ी; इतना ही नहीं श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास के कारण जो थोड़ा बहुत भक्तिभाव उसमें उत्पन्न हो गया था वह भी उत्तरोत्तर कम होता गया और उसमें बहुत अधिक स्वार्थबुद्धि आ गई! श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये बहुत से लोगों को आते देख हृदय को द्रव्य का लोभ उत्पन्न हो गया। हृदय सदा श्रीरामकृष्ण के समीप रहा करता था। पीछे २ ऐसा होने लगा कि हृदय को खुश किये बिना कोई भी मनुष्य, जब चाहे तब और जितनी देर तक चाहे उतनी देर तक, दिल खोलकर श्रीरामकृष्ण से बातें भी नहीं कर सकता था। अतः शिवदर्शन करने के पूर्व प्रत्येक को पहले इस नंदी की यथाशक्ति पादपूजा करने के सिवाय दूसरा मार्ग ही नहीं रहा! धीरे २ हृदय का लोभ बढ़ने लगा। इस प्रकार की बातों की भनक श्रीरामकृष्ण के कान में पड़ते ही उन्होंने उसको कई प्रकार से समझाया और उपदेश दिया, कई बार उस पर वे गुस्सा भी हुए पर सब व्यर्थ हुआ। आगे चलकर तो हृदय श्रीरामकृष्ण पर ही गुस्सा होने लगा और वचि २ मे उन्हें प्रत्युत्तर भी देने लगा! श्रीरामकृष्ण के प्रति उसका भक्तिभाव भी कम पड़ गया। उसके व्यवहार से श्रीरामकृष्ण को बड़ा कष्ट होने लगा और उसकी इस प्रकार की अधोगति को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। किसी २ दिन तो वह इतना तंग करता था कि बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण के लिये वह असह्य हो जाता था और वे बच्चे के समान रोने लगते थे और हाथ जोड़कर उससे विनती करने लगते थे!

धीरे २ हृदय श्रीरामकृष्ण की नकल करने लगा। वह श्रीरामकृष्ण के समान ही गाने गाया करता, नाचता और भावावेश दिखाता था। उसका दुर्व्य-

वहार इस हद्द तक पहुँच गया था कि प्रत्यक्ष श्रीरामकृष्ण और उनके भक्तों के सामने वह श्रीरामकृष्ण के विरुद्ध बोलने लगा और समय २ पर उनकी दिल्लगी उड़ाने लगा ! इस कारण सभी को बुरा लगता था और मन में क्रोध भी आता था, पर उसका क्या उपयोग ? एक दिन योंही किसी कारण उसने श्रीरामकृष्ण को इतना डांटा कि वे बेचारे रोने लगे और बोले, " माता ! तूने मेरे सारे संसार बन्धन तोड़ दिये, पिता मर गये, माता मर गई, भाई भी चले गये, सभी अपने २ मार्ग में चले गये और अब अन्त में क्या हृदय के हाथ से मेरी इस प्रकार की दुर्दशा होनी शेष थी ? "—ऐसा कहते २ उन्हें समाधि लग गई ! समाधि के बाद कुछ देहस्मृति होने पर वे हँसते २ फिर कहने लगे—" माता ! वह मुझ पर सचमुच ही प्रेम करता है। अतः वह चाहे जो बकता है; बेचारा अनजान मनुष्य है वह क्या जाने ? उस पर इस प्रकार गुस्सा क्यों होना चाहिये ? "—ऐसा कहते वे पुनः समाधिमग्न हो गये ! इतना सब हो गया तो भी हृदय की बकबक जारी ही रही।

बाद में एक दिन हृदय की बात निकलने पर पिछली सब बातों की याद करके श्रीरामकृष्ण बोले—" उसने पहिले मेरी जैसी सेवा की अन्त में कष्ट भी वैसा ही दिया। उदरशूल से मै बीमार था। कुछ भी खा नहीं सकता था। पीठ और पेट एक होकर शरीर में केवल हड्डियाँ रह गई थीं, तब एक दिन वह मुझ से क्या कहता है—' इधर देखो, मैं कैसा अच्छा खाता पीता हूं, तुम्हारे तो नसीब में है ही नही, उसको तुम क्या करोगे ? ' और एक दिन बोला—' बाबा जी, मैं न रहता तो देखता तुम्हारा साधूपन कैसे चलता ? ' एक दिन तो उसने मुझे ऐसा सताया कि मैं उदास होकर प्राण देने के इरादे से गंगा के घाट पर पहुँच गया। (कुछ देर ठहरकर) पर पहिले उसने सेवा भी वैसी ही की। माता जैसे अपने छोटे बच्चे को पालती है वैसी ही सावधानी के साथ उसने मेरी रक्षा की। मुझे तो देह की भी सुधि नहीं रहती थी। पर वही मेरी सब व्यवस्था ठीक २ रखता था। उसके 'उठ' कहने से मैं उठता और 'बैठ' कहने पर बैठता था। माता की इच्छा से यदि वह यहाँ न होता तो मेरा शरीर ही नहीं टिकता ! " अस्तु—

पीछे २ तो काली मन्दिर के नौकर चाकरों को भी हृदय तंग करने लगा। श्रीरामकृष्ण ने उसे कई बार ताकीद की कि "इसका फल अच्छा नहीं होगा, तू अपना आचरण सुधार।" परन्तु उसने इसकी कोई परवाह नहीं की। उलटा वही श्रीरामकृष्ण को कभी २ कह दे—"रासमणि के अन्न के सिवाय तुम्हारे लिये कोई मार्ग है ही नहीं। इसलिये तुम चाहे सब से डरकर चलो, मैं क्यों किसी की परवाह करूँ? बहुत होगा तो मुझको यहाँ से चले जाने को कहेंगे न? चला जाऊँगा मैं!"

हृदय की उद्दण्डता बढ़ती ही गई और उससे सभी को--और विशेषतः श्रीरामकृष्ण को--अत्यन्त कष्ट होने लगा। हरएक को ऐसा लगने लगा कि "यह बला यहाँ से कब टले, कब अपना मुँह काला करे।" हृदय के पाप का घड़ा भरता आ रहा था। काली मन्दिर की स्थापना के दिन दक्षिणेश्वर में प्रति वर्ष उत्सव हुआ करता था। सन् १८८१ के उत्सव के दिन त्रैलोक्य बाबू (मथुरबाबू के पुत्र) अपने सब कुटुम्बियों समेत वहाँ आये हुए थे। उस दिन सबेरे देवी की पूजा करने के लिये हृदय काली मन्दिर में गया। वहाँ त्रैलोक्य बाबू की १०-११ वर्ष की छोटी लड़की खड़ी थी। हृदय ने उसके पैरों पर चन्दन पुष्प आदि चढ़ाकर उसकी पूजा की! साधनाकाल में श्रीरामकृष्ण इसी तरह छोटी लड़कियों की जगदम्बा भावना से पूजा किया करते थे। हृदय भी वैसा ही करने गया। थोड़ी देर में यह बात त्रैलोक्य बाबू के कानों तक पहुँची। उन्हें हृदय के आचरण से बड़ा सन्ताप हुआ और उन्होंने अपने नौकर के द्वारा हृदय को धक्के मारकर काली मन्दिर से निकलवा दिया और काली मन्दिर में उसके पुनः घुसने की मनाई कर दी!

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण और हृदय के सम्बन्ध की इति हुई। इसके बाद हृदय काली मन्दिर के पास के यदुनाथ मल्लिक के बगीचे में रहता था। श्रीरामकृष्ण के पास काली माता के प्रसाद की दो थालियाँ आया करती थीं। उन में से एक थाली वे रोज़ दोनों वक्त हृदय के पास भेज दिया करते थे और बीच २ में स्वयं भी उसके पास जाकर उसकी हालत देख आया करते थे। इतना सब हो गया पर तो भी हृदय के लोभ की मात्रा कम नहीं हुई। एक दिन

तो वह श्रीरामकृष्ण से कहने लगा—" मामा ! आप इस मन्दिर में रहकर क्या करते हैं ? चलिये हम लोग किसी दूसरी जगह जाकर काली मन्दिर बनावें और दोनों वहां सुख से रहें ! " इसे सुनकर श्रीरामकृष्ण सन्तप्त होकर बोले--" बेटे ! अब तू मुझको लेकर लोगों के दरवाज़े दरवाज़े प्रदर्शन करता घुमायेगा ऐसा दिखता है । "

पीछे २ उसको अपने दुर्व्यवहार का पश्चात्ताप हुआ । श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ हो जाने पर वह उदर पोषण के लिये कपड़ा बेचने का रोज़गार करने लगा । उसे इस बात का अत्यन्त दुःख होता था कि श्रीरामकृष्ण ऐसे महापुरुष के आश्रय में रहते हुए भी उसने उनसे अपना कोई लाभ स्वयं नहीं उठाया और वह श्रीरामकृष्ण के शिष्यवृन्द के साथ मिल जुलकर अपने इस दुःख को कम करने का प्रयत्न करता था । इस शिष्य समुदाय के सामने वह अपना दिल खोलकर श्रीरामकृष्ण की बातें बतलाया करता था । श्रीरामकृष्ण के साधनकाल से लगाकर वह उनके अत्यन्त निकट सहवास में था, इस कारण श्रीरामकृष्ण के चरित्र की कई बातों की जानकारी लोगों को उसी के द्वारा प्राप्त हुई है । श्रीरामकृष्ण की शिष्य मण्डली उससे सदा परामर्श किया करती थी और उसने श्रीरामकृष्ण की जो मनपूर्वक सेवा की थी उसे स्मरण करते हुए उसका उचित सम्मान करती थी । श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ होने के १३ वर्ष के बाद अपनी आयु के ६२–६३ वें वर्ष में हृदय अपने ग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुआ । यह सन् १८९६ की बात है ।

५—मथुर की मृत्यु (१८७१)
और
षोड़शी पूजा। (१८७३—७४)

" (मथुर ने) कहीं किसी राजकुल में जन्म लिया होगा। उसकी भोग वासना नष्ट नहीं हुई थी। "

" वहीं (स्वयं उन की पत्नी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती तो हमारे संयम का बांध फूटकर मन में क्षुद्र देह बुद्धि का उदय हुआ होता या नहीं—यह कौन कह सकता है ? "

—श्रीरामकृष्ण ।

तीर्थयात्रा से लौटने के बाद २।–२॥ वर्ष तक कोई विशेष घटना नहीं हुई। सन् १८७० में श्रीरामकृष्ण के भतीजे (रामकुमार के लड़के) अक्षय की दक्षिणेश्वर में मृत्यु हो गई। वह १८६६ से १८७० तक श्री राधाकान्त के पुजारी पद पर था। उसका स्वभाव बहुत ही सरल और प्रेमयुक्त था। वह अत्यन्त भक्त था और अपना बहुत सा समय पूजा, जप, ध्यान में ही बिताता था। उसके इस गुण के कारण श्रीरामकृष्ण का उस पर बड़ा प्रेम था। उस की मृत्यु से उन्हें बहुत दुःख हुआ और जिस कमरे में वह मरा उस कमरे में

उन्होंने फिर कभी भी पैर नहीं रखा। अक्षय की मृत्यु के बाद उसकी जगह पर श्रीरामकृष्ण के मझले भाई रामेश्वर * की नियुक्ति हुई।

श्रीरामकृष्ण अक्षय की मृत्यु का दुःख भूल जावें इस उद्देश से मथुरबाबू उन्हें अपनी ज़मींदारी के गांव में और अपने कुलगुरु के गांव में ले गये और वहां कुछ दिन व्यतीत करके उन्हें साथ लेकर दक्षिणेश्वर वापस आये।

मथुरबाबू अपनी ज़मींदारी के गांव से लौटे। उसके कुछ ही दिनों के बाद उनकी प्रकृति बिगड़ने लगी और वे ज़ोर से बीमार पड़ गये। उनके अवतार कार्य की समाप्ति का समय आ गया। श्रीरामकृष्ण के पुजारी पद स्वीकार करने के समय से अब तक पूरे १४ वर्ष मथुरबाबू ने उनकी एकनिष्ठ होकर सेवा की। श्रीजगदम्बा की अचिन्त्य लीला से वर्तमान युगावतार श्रीरामकृष्ण के अद्भुत-शक्ति विकास में सहायता करने का उच्च सम्मान उन्हें मिला था। उन्होंने अपना काम कितना सुन्दर किया यह तो उनके अब तक के वृत्तान्त से देख ही चुके हैं। अपने जीवन की अन्तिम अवधि में तो उन्हें श्रीरामकृष्ण की सेवा के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था। इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं है।

* रामेश्वर सन् १८७४ तक पुजारी पद पर रहे। उस साल वे अपने गांव वापस गये और वहीं उनकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर मेरी माता को बड़ा दुःख होगा ऐसा समझकर श्रीरामकृष्ण ने जगदम्बा से प्रार्थना की कि—"मेरी माता को इस दुःख के सहने की शक्ति दे" और अपनी माता के पास जाकर रोते २ यह दुःखद समाचार उनको सुनाया। श्रीरामकृष्ण बताते थे कि "मुझे मालूम पड़ता था कि इस समाचार को सुनकर माता के हृदय को बड़ा धक्का लगेगा, पर आश्चर्य है कि 'सभी को एक दिन जाना है इसलिये वृथा शोक नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार वह उलटा मुझे ही समझाने लगी। यह हाल देखकर मैं चकित हो गया और श्री जगदम्बा को बारम्बार प्रणाम करने लगा।"

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम (रामकृष्ण)।

इस प्रकार उनका मन रामकृष्णमय हो गया था।

श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष की सेवा अनन्य भाव से करने से उनका मन सहज ही अति उन्नत और निष्काम बन गया था। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनकी इतनी भक्तिनिष्ठा और दृढ़ विश्वास था कि वही उनके सर्वस्व परात्पर हो गये थे। पारलौकिक सद्गति के लिये श्रीरामकृष्ण की सेवा के सिवाय और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है इस बात का उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था। उनके नित्य के व्यवहार में भी इस अपूर्व भक्ति-विश्वास के उदाहरण देखने में आते थे।

एक बार मथुरबाबू को एक बड़ा फोड़ा हो गया। उसके कारण वे बिल्कुल रुग्ण शय्या में पड़ गये। ५-६ दिनों तक श्रीरामकृष्ण के दर्शन न मिलने के कारण उन्होंने हृदय के द्वारा उनको बुलवा भेजा। श्रीरामकृष्ण बोले, " मैं वहां जाकर क्या करूंगा ? मैं क्या कोई वैद्य हूं कि मैं उसका फोड़ा अच्छा कर दूंगा ? " श्रीरामकृष्ण को न आते देखकर मथुर ने उनके पास बुलौवा पर बुलौवा भेजा। उनका बहुत आग्रह देखकर श्रीरामकृष्ण से भी वहां उनके पास गये बिना नहीं रहा गया। वे हृदय को साथ लेकर उनके पास गये। श्रीरामकृष्ण को आये देखकर मथुर के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। उस आनन्द की स्फूर्ति में वे एकदम उठकर बैठ गये और बोले—" बाबा, मुझको आप के पैर की धूल लेने दीजिये ! " श्रीरामकृष्ण हँसते २ बोले—" वाह रे पागल ! मेरे पैर की धूल लेकर तेरा क्या फायदा होगा ? उससे क्या तेरा फोड़ा आराम हो जायगा ? " यह सुनकर मथुरबाबू बोले—" बाबा ! मैं क्या इतना पागल हूं कि इस फोड़े को आराम करने के लिये आप के पैर की धूल मांगूंगा ? उसके लिये तो ये डॉक्टर लोग हैं। मैं तो इस भवसागर को पार करने के लिये आपके पैर की धूल मांग रहा हूं। " मथुरबाबू के ये अलौकिक भक्ति-विश्वास के शब्द सुनकर

श्रीरामकृष्ण का हृदय करुणा से भर गया और वे एकदम समाधिमग्न हो गये और मथुर उनके चरणों को अपने मस्तक पर धारण करके अतिशय आनन्द अनुभव करते हुए अश्रु बहाने लगे! मथुरबाबू का फोड़ा थोड़े ही दिनों में अच्छा हो गया।

एक दिन भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू से बोले—"मथुर! तेरे (जीवित) रहते तक मै यहां (दक्षिणेश्वर में) रहूंगा।"—इसे सुनकर मथुरबाबू भयभीत हो गये। इसका कारण यह था कि उन्हें अच्छी तरह मालूम हो गया था कि साक्षात् जगदम्बा बाबा का रूप धारण करके मेरी और मेरे परिवार की सदा रक्षा कर रही है! वे बड़ी नम्रता से श्रीरामकृष्ण से बोले—"भला आप ऐसा क्यों कहते हैं बाबा? मेरी पत्नी और द्वारकानाथ (पुत्र) की भी आप पर बड़ी भक्ति है। उनको मैं किसके पास सौंप जाऊँ? ऐसा नहीं हो सकता, बाबा! उनके लिये आप को यहां रहना ही चाहिये।" मथुर की यह बात सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले—"अच्छा! मैं तेरी पत्नी और द्वारका के रहते तक यहां रहूंगा, तब तो ठीक होगा न?" और सचमुच हुआ भी यही। जगदम्बा दासी और द्वारकानाथ की मृत्यु के थोड़े ही दिनों के बाद श्रीरामकृष्ण गले के रोग से बीमार पड़े और दक्षिणेश्वर का निवास सदा के लिये छोड़कर अन्यत्र रहने के लिये चले गये। अस्तु—

इस प्रकार १४ वर्ष तक श्रीरामकृष्ण की अश्रुतपूर्व सेवा करके मथुरबाबू सन् १८७१ के जुलाई मास में बीमार पड़े। सात आठ दिनों में उनकी अवस्था ख़राब हो गई। बोलने में भी उन्हें अत्यन्त कष्ट होता था। श्रीरामकृष्ण पहिले ही समझ चुके थे कि मथुर के अलौकिक सेवाव्रत के उद्यापन का समय बिल्कुल निकट आ गया है। इस बीमारी में उन्हें देखने के लिये वे स्वयं नहीं गये। हृदय को ही वे प्रति दिन उनके पास भेजा करते थे। आख़िर के दिन तो उन्होंने हृदय को भी नहीं भेजा। मथुर का अन्त समय समीप आया हुआ देखकर उन्हें गंगा जी के तट पर पहुँचा दिया गया। उस दिन दोपहर को (१६ जुलाई) श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न होकर बैठे थे। उनका स्थूल शरीर दक्षिणेश्वर में उनके कमरे में था, परन्तु वे अपने दिव्य शरीर से वहां अपने परम भक्त के पीछे खड़े

होकर उसे ज्योतिर्मय मार्ग से–अत्याधिक पुण्य से प्राप्त होने वाले–स्वर्ग लोक में स्वयं चढ़ा रहे थे।

श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी—उस समय पांच बज गये थे। श्रीरामकृष्ण हृदय को पुकारकर बोले—"मथुर दिव्य रथ में बैठकर गया, श्री जगदम्बा की सखियों ने उसे बड़े आदर से रथ में बिठाया। मथुर देवीलोक को चला गया।"

बाद में रात को ९।१० बजे मन्दिर के नौकर, चाकर, पुजारी आदि वापस आये और उन्होंने सन्ध्या के ५ बजे मथुरबाबू का देहान्त हो जाने की वार्ता बतलाई। मथुरबाबू * की मृत्यु के बाद ६ महीने बीत गये। दक्षिणेश्वर की सभी व्यवस्था उनकी मृत्यु के बाद भी ठीक तरह से चल रही थी। लगभग इसी समय श्रीरामकृष्ण की साधना के इतिहास में एक विशेष घटना हुई जिसका यहां विस्तारपूर्वक उल्लेख करना है।

पीछे कह आये हैं कि वेदान्त साधन हो जाने के बाद कुछ दिनों तक श्रीरामकृष्ण अपने गांव में जाकर रहे और वहां उनकी पत्नी भी मायके से आई थीं। श्रीरामकृष्ण जब तक वहां रहे तब तक उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षा देते रहे और छोटी होते हुए भी बुद्धि तीक्ष्ण होने के कारण उस शिक्षा का उनके मन पर बहुत असर हुआ। उनका पवित्र और शुद्ध मन श्रीरामकृष्ण की

*[रानी रासमणि मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई जिस भय से व्याकुल थी—(भाग १ प्रकरण २०, भैरवी ब्राह्मणी का आगमन) वह भय अन्त में सच्चा निकला। मथुरबाबू के जीते जी पद्ममणि और जगदम्बा दासी के बीच मन्दिर की संपत्ति के विषय में झगड़ा शुरू हो गया। मथुर की मृत्यु के बाद तो इस कलह ने बड़ा रूप धारण कर लिया और वह हाईकोर्ट तक पहुँचा। हाईकोर्ट में उसका निपटारा हुआ और उस कोर्ट का निर्णय दोनों पक्षों को स्वीकृत हुआ। पर बाद में पद्ममणि और जगदम्बा दासी की मृत्यु के बाद सन् १८८८ में पुनः उनके लड़कों में (रानी रासमणि के नातियों में) झगड़ा शुरू हुआ। इन सब झगड़ों में मन्दिर की सम्पत्ति रहन हो गई और वह अब तक ऋण मुक्त नहीं हुई है।]

दिव्य संगति में आनन्दपूर्ण हो गया था। श्रीरामकृष्ण के दक्षिणेश्वर लौट आने पर जब वे अपने मायके वापस गईं तब उनके पूर्व के स्वभाव को बदले हुए देखकर उनके घर के लोगों को आश्चर्य हुआ पर इसका कारण उनके ध्यान मे नहीं आया।

इस बात को अब ४ वर्ष होते आये थे और उन्हें १८ वां वर्ष लग गया था। अपने ऊपर अपने पति का प्रेम है यह जानकर वे आनन्द में मग्न रहती थीं तथापि गांव के लोग उनके सम्बन्ध में जो तरह २ की बातें कहते थे उनसे उनके मन पर कुछ न कुछ परिणाम हो ही जाता था। उनके मन में आता था कि "क्या उनका स्वभाव सचमुच बदल गया है? क्या वे सचमुच पागल हो गये हैं?" उनकी सखी-सहेलियाँ उन्हें "पगले की औरत" कहकर चिढ़ाती थीं तब उन्हें बड़ा दुःख होता था और कभी २ सोचने लगती थीं कि "स्वयं दक्षिणेश्वर जाकर सच बात क्या है सो अपनी आँखों से देख लूं। भला यदि यथार्थ में वे पागल हो गये हों, तो मुझे भी यहां रहकर क्या करना है? वहीं उनके पास रहकर उनकी सेवा करनी चाहिये।" यही सोचकर उन्होंने जितनी जल्दी हो सके दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया।

फाल्गुन की पूर्णिमा को गंगास्नान के लिये कई जगह से लोग कलकत्ता आया करते हैं। जयरामवाटी से भी उस वर्ष पूर्णिमा के स्नान के लिये बहुत से लोग कलकत्ता जाने वाले थे। उनमें उनके सम्बन्धियों के यहां की स्त्रियां भी थीं। उनके साथ जाने के लिये अच्छा अवसर देखकर उन्होंने अपने पिता से जाने की अनुमति मांगी। रामचन्द्र मुखोपाध्याय ने उनके मन के उद्देश को ताड़ लिया और उन्होंने भी उनके साथ कलकत्ता चलने का निश्चय किया।

प्रस्थान के दिन प्रातः काल सूर्योदय होते ही लोग चल पड़े। उन दिनों रेल न होने के कारण साधारण स्थिति के लोग पैदल ही जाया करते थे। दिन को चलते थे और रात को किसी गांव में या धर्मशाला में ठहर जाते थे। इसी क्रम से वे लोग जाते थे। परस्पर एक दूसरे की संगति में सभी यात्री बड़े

आनन्द से जा रहे थे कि रास्ते में एक विघ्न आ पड़ा। चलने का अभ्यास न रहने के कारण श्रीरामकृष्ण की पत्नी रास्ते में ही बीमार हो गई और रामचन्द्रबाबू को उसके कारण रास्ते में एक धर्मशाला में ही ठहरना पड़ा।

इस तरह रास्ते में ही बीमार पड़ जाने से श्रीरामकृष्ण की पत्नी को तथा उनके साथ वालों को बहुत कष्ट हुआ। तथापि उस धर्मशाला में रहते समय उन्हें एक अद्भुत दर्शन प्राप्त हुआ जिससे उन्हें बहुत धैर्य मिला। इस सम्बन्ध में वे एक बार श्रीरामकृष्ण के स्त्री भक्तों को कहती थीं कि "मेरा शरीर ज्वर के दाह से जल रहा था और मैं प्रायः बेसुध पड़ी हुई थी; ऐसी अवस्था में मुझे ऐसा दिखाई दिया कि एक स्त्री मेरे सिरहाने के पास आकर बैठी है, उसका वर्ण काला है, तथापि रूप बहुत सुन्दर है। पास में बैठकर वह मेरे सिर पर हाथ फिराने लगी और उसके शीतल और कोमल हस्तस्पर्श से मेरा दाह कम पड़ने लगा। मै उससे पूछने लगी—'देवि, आप कहां से आई हैं?' वह बोली—'दक्षिणेश्वर से।' मैं चकित होकर बोली—'क्या? आप दक्षिणेश्वर से आई है? मै भी वहीं जाने के लिये रवाना हुई हूं। मेरी इच्छा है कि वहां जाकर उनके (श्रीरामकृष्ण) दर्शन करूं और उनकी सेवा में कुछ समय बिताऊँ। पर वह सब विचार एक ओर रहा। मै ही यहां बीमार पड़ गई हूं। हे देवि! क्या मेरे भाग्य में उनके दर्शन हैं?' वह स्त्री बोली—'है नहीं तो? अवश्य हैं। तू अब अच्छी हो जावेगी, वहां जावेगी, उनका दर्शन करेगी, सब कुछ अच्छा ही अच्छा होगा। तेरे लिये ही तो वहां उन्हें रोक रखा है।' मैं बोली—'सच? पर हे देवि! आप मेरी कौन हैं?' वह बोली—'मैं तेरी बहिन हूं।' यह सुनकर मै बोली—'सच? इसीलिये क्या आप आई है!' इतना संवाद होने के बाद मै होश में आ गई।"

दूसरे दिन उनका ज्वर उतर गया और उसके बाद एक दो दिन वहीं बिताकर फिर सब लोग धीरे २ कलकत्ता की ओर रवाना हुए। रास्ते में एक सवारी भी मिल गई। इस तरह मुकाम करते २ सब लोग दक्षिणेश्वर में पहुँच गये। रात को लगभग नौ बजे माता जी काली मन्दिर में पहुँचीं। अपनी पत्नी को बीमारी की अवस्था में ही वहां आई हुई देखकर श्रीरामकृष्ण को दुःख हुआ।

सर्दी आदि लगकर ज्वर पुनः न आ जाय इस डर से उन्होंने उनके लिये अपने ही कमरे में एक ओर अलग बिस्तर बिछा दिया और वे दुःख के साथ बारम्बार कहने लगे—"अरे! तू इतने दिनों के बाद क्यों आई? अब क्या मेरा मथुर जीवित है जो तेरा ठीक २ प्रबन्ध करेगा?" दूसरे दिन सबेरे ही उन्होंने वैद्य को बुलवाकर औषध दिलाना शुरू किया। तीन चार दिन दवा पानी का ठीक प्रबन्ध करके ज्वर दूर हो जाने पर नौबतखाने में अपनी माता के पास उनके रहने का प्रबन्ध श्रीरामकृष्ण ने कर दिया।

उनकी पत्नी का संशय दूर हो गया और उन्हें निश्चय हो गया कि हमारे पति जैसे पहिले थे, वैसे ही अभी भी हैं। अब यह देखकर उनके आनन्द का पार नहीं रहा और वे नौबतखाने में रहकर अपने पति और सास की मन लगाकर सेवा शुश्रूषा करने में समय बिताने लगीं। अपनी पुत्री को आनन्दित देख उनके पिता कुछ दिन वहां रहकर अपने गांव को लौट गये।

हम पहिले बता चुके हैं कि कामारपुकूर में रहते समय श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु कुछ दिनों में वे दक्षिणेश्वर लौट आये, इसलिये उसकी शिक्षा का कार्य और अपनी तपश्चर्या को कसौटी पर रखने का उनका उद्देश अधूरा ही रह गया। स्वयं अपने आप वे किसी भी कार्य में अग्रसर नहीं होते थे; श्री जगदम्बा की इच्छा से जो कार्य सामने आ जावे उसी को मन लगाकर पूरा करते थे। उनका यह स्वभाव उनकी प्रकृति में दृढ़ हो गया था। अतः उन्होंने अपनी तपश्चर्या को कसौटी पर कसने का विचार, अपनी पत्नी के आप ही वहां आने तक, कभी नहीं किया। पत्नी को शिक्षा देने के लिये या अपनी तपस्या की परीक्षा करने के लिये स्वयं उन्होंने अपनी पत्नी को नहीं बुलवाया। पर अब पत्नी के दक्षिणेश्वर में ही आ जाने के कारण उन्होंने यह कार्य पूरा करने का निश्चय किया, और सब तरह के सांसारिक विषयों से लगाकर गहन आध्यात्मिक विषय तक के सम्बन्ध की शिक्षा देना उन्होंने आरम्भ किया। उन्होंने उनसे कहा—"चांद जैसे सभी लड़कों का मामा है वैसे ही ईश्वर भी हम सब का है; उसकी भक्ति करने का अधिकार सभी को है; जो उसकी भक्ति करेगा उसे वह दर्शन देकर कृतार्थ करेगा।

तू उसकी भक्ति करेगी, तो तुझको भी वह दर्शन देगा।" श्रीरामकृष्ण की शिक्षापद्धति ऐसी थी कि वे शिष्य पर बहुत प्रेम करके प्रथम उसे बिल्कुल अपना लेते थे और तत्पश्चात् वे उसे केवल उपदेश देकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, वरन् अपने उपदेश के अनुसार शिष्य चल रहा है या नहीं इस ओर भी बड़ी बारीकी से ध्यान रखते थे और कहीं उसकी गलती होती थी तो उसे वे समझा बुझा-कर पुनः उचित मार्ग में लगाते थे। अपनी पत्नी के सम्बन्ध में भी उन्होंने इसी पद्धति का अवलम्बन किया। दक्षिणेश्वर में आते ही उन्होंने अपनी पत्नी को बीमार देखकर उन्हें अपने ही कमरे में ठहराया और उनके आराम होने पर जब वे नौबतखाने में अपनी सास के पास रहने लगीं तब भी रात को उन्हें अपनी शय्या पर भी सोने की अनुमति दे दी! इससे पत्नी को उनके प्रति कितनी ममता उत्पन्न हुई होगी और उनके सभी उपदेशों को वे कितनी तत्परता से मानती होंगी इसकी कल्पना पाठक ही करें। श्रीरामकृष्ण के इस समय के दिव्य आचरण का वृत्तान्त हम पहिले ही (विवाह प्रकरण में) पाठकों को बताला चुके हैं। अब यहां केवल एक दो नई बातें ही बताना शेष हैं।

इस समय एक दिन उनके पैर दबाते २ माता जी ने उनसे एकाएक पूछा "मुझको आप कौन समझते हैं?" श्रीरामकृष्ण बोले—"जो माता उस काली मन्दिर में है वही इस शरीर को जन्म देकर अभी नौबतखाने में निवास करती है, और वही यहां पर इस समय मेरे पैर दबा रही है! तू मुझे सचमुच ही सदा साक्षात् आनन्दमयी के स्वरूप में ही दिखाई दिया करती है!"

और भी एक दिन अपनी पत्नी को अपने समीप ही सोती हुई देखकर अपने मन को संबोधन करते हुए श्रीरामकृष्ण विचार करने लगे, "अरे मन! इसी को स्त्री-शरीर कहते हैं, सारा संसार इसी को परमभोग्य वस्तु मानकर उसकी प्राप्ति के लिये सदा लालायित रहकर अनेक प्रयत्न करता रहता है परन्तु इसके ग्रहण करने से देहासक्ति में सदा के लिये फँस जाने से सच्चिदानन्द ईश्वर को प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। हे मन! सच सच बोल, भीतर एक और बाहर दूसरा ऐसा मत रख—तुझे यह शरीर चाहिये कि ईश्वर चाहिये? यह शरीर चाहिये तो यह देख यहां तेरे पास ही पड़ा है, इसे ग्रहण कर!"—ऐसा विचार करके

श्रीरामकृष्ण ज्योंही अपनी पत्नी के शरीर को स्पर्श करने ही वाले थे त्योंही उनका मन कुंठित होकर उन्हें इतनी गहरी समाधि लग गई कि उन्हें रात भर देह की सुधि न रही। प्रातः काल हो जाने के बाद कितने ही बार उनके कान में ईश्वर का नामस्मरण करने पर उनकी वह समाधि उतरी।

पूर्ण यौवनयुक्त श्रीरामकृष्ण और उनकी नवयौवन सम्पन्न पत्नी के दिव्य-लीला विलास के ऐसे अपूर्व चरित्रों की बातें–जो हमने स्वयं श्रीरामकृष्ण के मुख से सुनी हैं वे–सारे जगत के आध्यात्मिक इतिहास में अश्रुतपूर्व हैं। किसी भी अवतारी महापुरुष के सम्बन्ध में ऐसे अलौकिक आचरण की बातें सुनने में नहीं आईं। इन सब बातों को सुनकर मन बिल्कुल आश्चर्य में डूब जाता है। उन दिनों श्रीरामकृष्ण कई रातें समाधि में ही बिता देते थे और समाधि उतरने के बाद भी उनका मन इतनी उच्च अवस्था में रहता था कि उसमें एक क्षण के लिये भी साधारण देहबुद्धि का उदय नहीं होता था!

इस प्रकार दिन के बाद दिन, मास के मास बीत चले और एक वर्ष से भी अधिक समय चला गया; तथापि उन अद्भुत श्रीरामकृष्ण और उनकी उस अद्भुत धर्मपत्नी के मनसंयम का बांध किंचित् भी नहीं फूटा। एक क्षण भर के लिये भी उनके मन में तुच्छ काम वासना का उदय नहीं हुआ। इस समय की याद करके श्रीरामकृष्ण कभी २ हम से कहा करते थे--"वही (पत्नी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती और कामासक्ति से विवेकहीन बन जाती, तो हमारे संयम का बांध फूटकर मन में देहबुद्धि का उदय होता या नहीं, यह कौन कह सकता है? उसके साथ एकान्त में रहते हुए मुझे निश्चय हो गया कि विवाह के बाद मैंने जो श्री जगदम्बा से अत्यन्त व्याकुलता से प्रार्थना की थी, कि 'माता! इसके मन से सब काम वासना नष्ट कर दे'—उस प्रार्थना को माता ने अवश्य सुन लिया!"

एक वर्ष से अधिक समय तक इस प्रकार पत्नी के साथ रहने पर भी जब श्रीरामकृष्ण के मन में काम कल्पना का किंचित् भी उदय नहीं हुआ, तब उन्हें निश्चय हो गया कि मैं श्री जगदम्बा की कृपा से इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण

हो गया और मेरे मन में अब आगे भी काम विकार का उदय होना असम्भव है ! इस निश्चय के कारण उनके मन में एक अद्भुत इच्छा उत्पन्न हुई और उसके अनुसार उन्होंने तुरन्त ही अनुष्ठान करने का निश्चय भी कर लिया। इसके सम्बन्ध में हमने श्रीरामकृष्ण और श्री माता जी दोनों के मुँह से जो सुना है वह यहां पर पाठकों के लिये लिखा जा रहा है।

आज ज्येष्ठ की अमावस्या है, फलाहारिणी कालिका की पूजा का पुण्य दिवस है, दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में भी आज इसका महोत्सव है, आज श्री जगदम्बा की पूजा स्वयं करने की इच्छा से श्रीरामकृष्ण ने पूजा की सामग्री एकत्रित करना आरम्भ कर दिया था; परन्तु आज की पूजा की तैयारी मन्दिर में न होकर उनके ही कमरे में उनकी ही इच्छा के अनुसार गुप्त रूप से हो रही थी। देवी के बैठने के लिये एक सुन्दर चौरंग तैयार करके रखा गया था। धीरे २ दिन डूब गया और रात हुई। अमावस्या की कालिमा सर्वत्र फैली हुई थी। आज मन्दिर में देवी की विशेष पूजा रहने के कारण, श्रीरामकृष्ण के लिये पूजा की सभी तैयारी ठीक २ करके, हृदय श्री जगदम्बा के मन्दिर में चला गया। राधाकान्त के मन्दिर में रात्रि की पूजा निपटाकर वहां का पुजारी श्रीरामकृष्ण की सहायता के लिये आया। पूजा की सब तैयारी होते २ नौ बज गये। पूजा के समय अपने कमरे में उपस्थित रहने के लिये श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को सन्देशा भेजा जिससे वह भी वहां आई थीं। सब तैयारी हो चुकी है यह देखकर श्रीरामकृष्ण पूजा करने बैठ गये।

सर्व पूजा सामग्री का प्रोक्षण करके श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी से श्री जगदम्बा के लिये रखे हुए चौरंग पर बैठ जाने के लिये इशारा किया। श्रीरामकृष्ण के इस कृत्य का थोड़ा बहुत अर्थ पहिले ही उसके ध्यान में आ जाने से उसे अर्धबाह्य अवस्था प्राप्त हो गई थी। अतः मैं क्या कर रही हूं यह उसके ध्यान में ठीक २ न आते हुए मोहिनी से वशीभूत की तरह वह चौरंग पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गई; पास ही रखे हुए कलश में से पानी लेकर श्रीरामकृष्ण ने अपनी स्त्री पर यथाविधि सिंचन किया। तदनन्तर मंत्रोच्चारण समाप्त करके वे प्रार्थना मंत्र कहने लगे:—

" हे बाले ! हे सर्वशक्ति-अधीश्वरी माते ! त्रिपुरसुन्दरि ! सिद्धि का द्वार खोल दे और इसका (पत्नी का) मन और शरीर पवित्र करके, इसमें प्रकट हो और सब का कल्याण साधन कर ! "

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी का साक्षात् श्री जगदम्बा ज्ञान से षोड़शोपचार पूजन किया और नैवेद्य दिखलाकर उसमें के पदार्थों का थोड़ा २ अंश अपने हाथ से उसके मुख में डाला। यह सर्व विधि पूर्ण होते होते उन की पत्नी को समाधि लग गई ! अर्धबाह्य दशा में मंत्रोच्चार करते २ श्रीरामकृष्ण भी समाधिमग्न हो गये ! देवी और उसके पुजारी दोनों ही एक रूप हो गये !

कितना ही समय बीत गया। रात्रि का द्वितीय प्रहर भी बीतकर बहुत समय हो गया तब कहीं श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी ! पूर्ववत् अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर उन्होंने देवी से आत्मनिवेदन किया। तदनन्तर अपनी जप की माला, अपने साधनों के फल और स्वयं अपने आपको देवी के पादपद्मों में स्थायी रूप से चढ़ाकर पुनः मंत्रोच्चारण करते हुए वे उसे प्रणाम करने लगे:—

" हे सर्व मंगलमांगल्ये ! हे सर्वकर्मनिष्पन्नकारिणि ! हे शरणदायिनि ! त्रिनयने ! शिवमोहिनी गौरी ! हे नारायणि ! तुझे शतशः प्रणाम हैं ! "

पूजा समाप्त हुई। मनुष्य देहधारिणी श्री जगदम्बा की पूजा करके श्रीरामकृष्ण ने अपने अलौकिक साधनों की समाप्ति की !

इस षोड़शी पूजा के बाद लगभग ५ मास तक माता जी श्रीरामकृष्ण के समीप रहीं। पहिले के समान ही वे दिन को नौबतखाने में अपनी साग की सेवा में समय बिताती थीं और रात को श्रीरामकृष्ण के पास ही शयन करती थीं। श्रीरामकृष्ण रात दिन समाधिमग्न रहते थे और कभी २ उन्हें ऐसी गहरी समाधि लग जाती थी कि उनके शरीर पर मृतक के लक्षण दिखाई देते थे ! श्रीरामकृष्ण को किस समय कैसी समाधि लग जायगी इसका कोई ठिकाना नहीं था। इसी डर से माता जी को सारी रात नींद नहीं आती थी। एक दिन तो बहुत समय बीत गया, अभी तक समाधि क्यों नहीं उतरती, इस डर से वे हृदय को नींद से

जगाकर लाई। आने पर हृदय ने उनके कान में बहुत देर तक नामोच्चारण किया तब उनकी समाधि उतरी। इस बात को जानकर कि अपनी पत्नी को अपने कारण रोज नींद नहीं आती श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपनी माता के पास नौबतखाने में रात को सोने के लिये कह दिया। इस प्रकार एक वर्ष और चार मास दक्षिणेश्वर में बिताकर श्री माता जी कार्तिक मास में कामारपुकूर लौट गईं।

६—साधक भाव सम्बन्धी कुछ और बातें।

"वही पुरुष—डुबकी लगाकर इधर बाहर निकला तो कृष्ण हो गया और उधर बाहर निकला तो ईसा हो गया।"

"सिक्खों के दस गुरू जनक राजा के अवतार हैं।"

"साधना करने से सभी को ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है सो बात नहीं है।"

"(अपनी ओर उंगली दिखाकर) इसमें कुछ विशेषता है।"

—श्रीरामकृष्ण।

षोड़शी पूजा समाप्त होने से श्रीरामकृष्ण का अलौकिक साधनयज्ञ पूर्ण हो गया। ईश्वरानुराग की जो पवित्र अग्नि उनके हृदय में लगातार १२ वर्षों से धधक रही थी और जिसकी कठोर दाहक शक्ति ने उनके मन में इतने दिनों तक प्रचंड खलबली मचाकर उन्हें लगातार अशान्त रखकर उनके द्वारा अनेक प्रकार की साधनाएँ कराईं, और तदनन्तर भी कुछ दिनों तक जिसने उन्हें पूर्ण शान्तिलाभ नहीं होने दिया, वही पवित्र अग्नि षोड़शी पूजा की पूर्णाहुति पाकर इतने दिनों बाद कुछ २ शान्त हुई। और वह शान्त न हो तो करे क्या? श्रीरामकृष्ण के पास तो अब कुछ भी बाकी नहीं बचा था जिसे उन्होंने पहिले ही आहुति न कर दिया हो। धन, मान, नाम, यश आदि सभी ऐहिक भोगेच्छाओं का तो उन्होंने कब का अग्नि में होम कर दिया था। मन, बुद्धि, अहंकार आदि सभी को उन्होंने

उस अग्नि के विकराल मुख में एक के बाद एक आहुति दे दी थी। हां! एक बात बच गई थी—वह थी नानाप्रकार के साधन करके भिन्न २ रूप में जगदम्बा के दर्शन करने की वही एक इच्छा। वही उनके मन में इतने दिनों तक अवशिष्ट रह गई थी। उसे भी उन्होंने उसी अग्नि को समर्पण कर दिया। तब फिर वह अग्नि शान्त न हो तो क्या हो?

परन्तु षोड़शी पूजा के बाद ज्योंही किसी तरह एक वर्ष बीता त्योंही उनके मन में एक और मत की साधनाएँ करने की इच्छा उत्पन्न हुई (सन् १८७५)। लगभग उसी समय उनका श्रीशंभूचन्द्र मल्लिक से परिचय हुआ था, और उनके मुँह से बाइबिल के श्री ईसू ख्रिस्त के पवित्र जीवन और सम्प्रदाय की थोड़ी बहुत जानकारी उन्हें प्राप्त हो गई थी। इस ईसाई मत का अवलम्बन करके उस मार्ग के अत्युच्च ध्येय को प्राप्त करने की उत्कंठा उन्हें होने लगी और श्री जगदम्बा ने भी अपने बालक की यह इच्छा अपनी अचिन्त्य लीला से अद्भुत उपाय द्वारा पूर्ण कर दी।

बात ऐसी हुई:—काली मन्दिर के अहाते के दक्षिण की ओर यदुनाथ मल्लिक का बगीचा और बंगला था। श्रीरामकृष्ण कभी २ घूमते घामते वहां पहुँच जाते थे। श्रीयुत यदुनाथ और उनकी माता दोनों की श्रीरामकृष्ण के प्रति बड़ी भक्ति थी और ये दोनों सदा श्रीरामकृष्ण के साथ ईश्वरी बातें करके आनन्द प्राप्त करते थे। किसी समय उनमें से यदि कोई घर में नहीं होता था और उस समय यदि श्रीरामकृष्ण वहां पहुँच जाते थे तो नौकर लोग उन्हें बैठक खाने में ले जाकर बैठाल देते थे। बैठक की दीवालों पर अनेक सुन्दर २ तैलचित्र लगे हुए थे। उन चित्रों में अपनी माता की गोद में बैठे हुए श्री ईसू ख्रिस्त का भी एक सुन्दर चित्र था। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"एक दिन वे उस बैठक में बैठे २ उस चित्र की ओर अत्यन्त तन्मय होकर देखते २ मन में ईसू ख्रिस्त के चरित्र का विचार कर रहे थे। इतने ही में उन्हें ऐसा दिखाई दिया कि वह चित्र जीवितज्योतिर्मय हो गया और 'मेरी' और 'ईसा' के शरीर से तेज की किरणें बाहर निकलकर उनके शरीर में प्रविष्ट होकर उनके सर्व मानसिक भावों का समूल परिवर्तन कर रही हैं। अपने अन्तःकरण से समस्त हिन्दू संस्कारों को न जाने कहां लुप्त

होते और उनके स्थान में दूसरे ही संस्कार उत्पन्न होते देखकर श्रीरामकृष्ण ने अपने को सँभालने का बहुत उपाय किया और वे अधीर होकर श्री जगदम्बा से कहने लगे—" माता ! माता ! तू आज मुझे यह क्या कर रही है ? " पर किसी का कुछ उपयोग नहीं हुआ। ये नवीन संस्कार बड़े प्रबल वेग से उत्पन्न हुए और इन्होंने उनके मन के सारे हिन्दू संस्कारों को डुबा दिया जिससे उनका देवीदेवताओं का भक्तिप्रेम न जाने कहां भाग गया, और उसके स्थान में उनके मन में ईसाई सम्प्रदाय के प्रति भक्ति और विश्वास उत्पन्न हो गया और उन्हें ऐसा दिखाई देने लगा कि मैं एक गिर्जाघर (चर्च) में ईसा की मूर्ति के सामने खड़ा होकर उसे धूप दीप दिखाकर उसके दर्शन के लिये अत्यन्त व्याकुलता से प्रार्थना कर रहा हूं। दक्षिणेश्वर को लौट आने पर भी उसी ध्यान में वे निमग्न थे और श्री जगदम्बा के दर्शन आदि लेने की उन्हें पूरी विस्मृति हो गई ! तीसरे दिन संध्या समय पंचवटी के नीचे सहज ही टहलते २ उन्होंने एक अपूर्व तेजसम्पन्न गौर वर्ण के भव्य पुरुष को स्थिर दृष्टि से देखते हुए अपनी ओर आते हुए देखा। उसे देखते ही उन्होंने पहिचान लिया कि यह कोई विदेशी पुरुष है। उसके नेत्र विशाल थे, नाक कुछ चपटी होने पर भी उसके मुखमण्डल की अपूर्व शोभा में कुछ कमी नहीं हुई थी। उस पुरुष को देखकर श्रीरामकृष्ण सोचने लगे—" यह देवतुल्य पुरुष कौन होगा ? " इतने में वह पुरुष अत्यन्त समीप आ पहुँचा और एकाएक श्रीरामकृष्ण के अन्तःकरण से यह ध्वनि निकल पड़ी—" अरे यह पुरुष तो ईसा ही है ! " इतने में ही श्रीरामकृष्ण को आलिंगन करके वह पुरुष उन्हीं के शरीर में अन्तर्धान हो गया और तत्क्षण श्रीरामकृष्ण को गहरी समाधि लग गई ! इस तरह श्रीरामकृष्ण को ईसाई धर्म का अन्तिम ध्येय प्राप्त हुआ।

फिर एक दिन सहज ही बोलते २ श्रीरामकृष्ण हम लोगों से कहने लगे—" क्यों रे ! तुम लोग तो बाइबिल पढ़े हो तब बोलो भला, उसमें ईसा के शरीर का वर्णन किस तरह किया गया है। " हमने उत्तर दिया—" महाराज ! उनके शरीर का वर्णन तो हमने बाइबिल में कहीं नहीं पाया, तथापि ईसा यहूदी जाति के होने के कारण गौरवर्ण के रहे होंगे, उनकी आँखें बड़ी और नाक अच्छी लम्बी रही होगी इसमें कोई संशय नहीं है। " यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले—" पर मुझे तो उनकी नाक चपटी दिखाई दी ! मालूम नहीं मुझे ऐसा क्यों

दिखा ? " इस पर हमने कोई उत्तर नहीं दिया तथापि हमें इतना अवश्य मालूम पड़ा कि श्रीरामकृष्ण को उनके भावावेश में दिखी हुई ईसा की मूर्ति सचमुच उनकी आकृति के समान कैसी हो सकती है। अस्तु—

श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ हो जाने के बाद हमें यह पता लगा कि ईसामसीह के शारीरिक आकार के सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत प्रचलित हैं, और उनमें से एक मत यह भी है कि उनकी नाक चपटी थी !

बुद्ध देव के विषय में अन्य हिन्दुओं के समान ही उनका भी यही विश्वास था कि बुद्ध देव प्रत्यक्ष ईश्वर के ही अवतार थे। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि पूरीक्षेत्र के श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति में श्री बुद्ध देव का प्रकाश अभी भी है। श्री जगन्नाथ क्षेत्र में जाने से जाति भेद की भावना दूर हो जाती है। इस तरह उस क्षेत्र की महिमा सुनकर उन्हें वहां जाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई पर वहां जाने से मेरा यह शरीर नहीं रहेगा यह सोचकर उन्होंने वहां जाने का विचार त्याग दिया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद ग्रहण करने से मनुष्य का मन तत्काल पवित्र हो जाता है। विषयी लोगों की संगति में कुछ समय व्यतीत हो जाने पर वे स्वयं कुछ गंगा जल और श्री जगन्नाथ देव का प्रसाद ग्रहण करते थे और अपने शिष्यों से भी उसी तरह करने के लिये कहते थे! अपने परमभक्त श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष लिखित बुद्धचरित्र नाटक को देखकर श्रीरामकृष्ण बोले—" श्री बुद्ध देव ईश्वर के अवतार थे इसमें कोई संशय नहीं है, उनके बताये हुए मत में और वैदिक ज्ञानमार्ग में कुछ भी अन्तर नहीं है ! "

जैन धर्म और सिक्ख धर्म पर भी श्रीरामकृष्ण की भक्ति थी। उनके कमरे में अन्य देवीदेवताओं के चित्रों के साथ २ श्री महावीर जी तीर्थंकर की एक पाषाणमूर्ति और ईसामसीह की तसबीर थी। प्रति दिन प्रातः सायं अन्य देवताओं के चित्रों के साथ इन चित्रों को भी वे धूपदीप दिखाया करते थे। जैन और सिक्ख धर्म के प्रति उनके मन में श्रद्धा तो थी ही पर हमने कभी नहीं सुना है कि उन्होंने तीर्थंकरों में से या सिक्खों के दस गुरुओं में से किसी को ईश्वरावतार कहा है। सिक्ख लोगों के दस गुरुओं के सम्बन्ध में वे कहते थे कि

"ये सब जनक ऋषि के अवतार हैं; सिक्ख मंडली के मुँह से मैंने सुना है कि देहत्याग के समय राजा जनक के मन में लोक कल्याण करने की वासना उत्पन्न हो गई थी, और इसी कारण उन्होंने नानक से लगाकर गुरु गोविंद तक दस गुरुओं के रूप में अवतार लेकर सिक्ख धर्म की स्थापना की।"

इस प्रकार संसार के सभी मुख्य २ धर्मों से श्रीरामकृष्ण ने परिचय प्राप्त कर लिया था और वे उनमें से बहुतों का अनुष्ठान करके उन २ धर्मों में बताये हुए ध्येय तक भी पहुँच चुके थे। इस प्रकार स्वयं भिन्न २ धर्मों के अनुष्ठान करने और प्रत्येक धर्म के अन्तिम ध्येय के एक ही होने का अनुभव कर लेने के कारण उनकी दृढ़ धारणा हो गई थी कि "जितने मत हैं उतने ही मार्ग हैं।" किसी भी मार्ग से जाने से ईश्वर की निःसंदेह प्राप्ति होती है। अन्तःकरण में प्रबल श्रद्धा, विश्वास और भक्ति चाहिये। श्रीरामकृष्ण के इस सिद्धान्त का आध्यात्मिक राज्य में अपूर्व मूल्य है। क्योंकि यद्यपि यह सिद्धान्त पूर्व काल में भी बताया गया था तथापि श्रीरामकृष्ण के समय तक किसी भी एक ही व्यक्ति ने भिन्न २ धर्मों का स्वयं अनुष्ठान करके उस अनुभव के ज़ोर पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया था। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं भिन्न २ धर्मों का अनुष्ठान करने के बाद ही अपनी अधिकारयुक्त वाणी से "जितने मत उतने मार्ग हैं" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया—कहना न होगा कि इसी कारण आध्यात्मिक जगत में उसका इतना बड़ा मूल्य है।

द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत तीन भिन्न २ मत न होकर मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति की केवल तीन भिन्न २ सीढ़ियाँ हैं और हर किसी को इन तीन सीढ़ियों से जाना पड़ता है—इस सिद्धान्त को श्रीरामकृष्ण ने अपने निज के प्रत्यक्ष अनुभव से लोगों के सामने रखा। ये तीनों मत उपनिषदादि शास्त्रों में ऋषियों द्वारा प्रतिपादित होने के कारण शास्त्रोक्त धर्म मार्ग में कितनी गड़बड़ मच गई है! प्रत्येक सम्प्रदाय का आचार्य दूसरे सम्प्रदायों के मत को खण्डन करके अपने मत को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, शब्दों का उलट पुलटकर अर्थ करता है, इस तरह धर्ममार्ग में बड़ी उलझन हो गई है और इसी कारण साधारण मनुष्य को "शास्त्र-विचार" या "शास्त्रोक्त धर्म मार्ग"

का नाम सुनकर घबड़ाहट पैदा हो जाती है—इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि शास्त्रों पर से विश्वास उठता गया और भारतवर्ष को आध्यात्मिक अवनति की वर्तमान अवस्था प्राप्त हो गई। वर्तमान युगावतार श्रीरामकृष्ण को इसी अविश्वास को दूर करने के लिये ही सर्व प्रकार की अवस्थाओं का स्वयं अनुभव प्राप्त करके उनका पारस्परिक यथोचित सम्बन्ध प्रस्थापित करने की आवश्यकता हुई। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की निम्न-लिखित उक्तियाँ ध्यान में रखने योग्य हैं—

> "विषयासक्त साधारण मनुष्य के लिये द्वैत भाव ही उचित है।"

> "मन और बुद्धि की सहायता से जब विशिष्टाद्वैत तक की बात बोलने और समझने लग जाते हैं तब जैसे ईश्वर सत्य, वैसे जीव-जगत भी सत्य, हो जाते हैं।"

> "अद्वैत भाव को अंतिम सीढ़ी जानो। अद्वैत भाव वाक्यमनोतीत अनुभव का विषय है।"

अब श्रीरामकृष्ण के एक और अद्भुत दर्शन का वृत्तान्त यहां लिखकर उनके साधक भाव की कथा को समाप्त करेंगे। सन् १८७५ में एक बार श्रीराम-कृष्ण को यह देखने की इच्छा हुई कि श्री चैतन्य देव का सर्वजन मनोहर नगर संकीर्तन कैसा रहा होगा और उनकी यह इच्छा श्री जगदम्बा ने पूर्ण भी कर दी। एक दिन श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के बाहर खड़े होकर पंचवटी की ओर सहज ही देख रहे थे। इतने में उन्हें दिखा कि उधर से कमरे की ओर से दक्षिणेश्वर बाग के मुख्य फाटक की तरफ़ एक बड़ा भारी जनसमुदाय भजन करते हुए जा रहा है। यह भी दिखाई दिया कि उस जनसमुदाय के मध्यभाग में श्री नित्यानंद और श्री अद्वैताचार्य को साथ लेकर श्री गौरांगदेव स्वयं भावावेश में नृत्य भजन कर रहे हैं जिससे आसपास के लोग भी देह की सुधि भूलकर

उनके साथ नाच रहे हैं और ज़ोर २ से हरिनाम की गर्जना कर रहे हैं। उस मेले में इतने लोग शामिल थे कि मेले के आदि और अंत का पता ही नहीं लगता था। उस मेले के कुछ लोगों का चेहरा तो श्रीरामकृष्ण को पूरा याद रह गया और जब बाद में वे लोग इनके भक्त बनकर आने लगे तब इन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि ये लोग पूर्व जन्म में श्री चैतन्य देव के भक्त थे!

इस अद्भुत दर्शन के कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण अपने गांव कामारपुकूर और हृदय के शिऊड़गांव में कुछ दिन रहने के लिये गये। शिऊड़गांव के पास श्याम बाज़ार गांव में बहुत से वैष्णव रहते थे। वहां नित्य भजन आदि होता है यह सुनकर श्रीरामकृष्ण को वहां जाने की इच्छा हुई। श्याम बाज़ार के समीप के बेलटे ग्राम के निवासी श्रीयुत नटवर गोस्वामी ने श्रीरामकृष्ण को इसके पहिले ही देखा था। श्रीरामकृष्ण शिऊड़ आये हुए हैं यह सुनकर उन्होंने उन्हें अपने घर आने के लिये निमंत्रण भेजा। हृदय को साथ लेकर श्रीरामकृष्ण वहां गये और वहां ७ दिन रहकर श्याम बाज़ार की वैष्णव मण्डली का भजन सुना। उनके प्रति श्याम बाज़ार के ईशान चंद्र मल्लिक के मन में बड़ी भक्ति उत्पन्न हो गई और उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपने यहां भजन के लिये बुलाया। भजन के समय का उनका भावावेश और मनोहर नृत्य देखकर भजन में आये हुए सभी लोग तल्लीन हो गये। शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण के अद्भुत भजन की कीर्ति वहां और उसके आस-पास के गांवो में फैल गई। क्रमशः उनका भजन सुनने और उनके साथ भजन करने के लिये आसपास के गांवों से झुण्ड के झुण्ड लोग श्याम बाज़ार में आने लगे और उस गांव में रात दिन भजन होना शुरू हो गया। धीरे २ लोगों में यह बात फैल गई कि एक बड़ा अच्छा भजन गाने वाला भगवद्भक्त आया है जो भजन करते समय कुछ देर तक मर जाता है और फिर कुछ समय के बाद जी जाता है! फिर क्या पूछना है? श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिये लोगों की इतनी भीड़ होने लगी कि कुछ कहा नहीं जा सकता। पेड़ों पर चढ़कर, घरों पर बैठकर, जहां जगह मिल जाय वहीं से लोग उनके दर्शन करने लगे। उनके चरणों पर मस्तक रखने के लिये तो इससे भी अधिक भीड़ होने लगी। लोग उनके दर्शन करने और पैर पड़ने के लिये मानो पागल से हो गये थे! लगातार तीन दिनों तक यही हाल रहा। श्रीरामकृष्ण को खाने पीने और विश्रांति के लिये भी

समय नहीं मिलता था। यह देखकर हृदय ने चालाकी से उन्हें छिपाकर घर के पीछे के दरवाज़े से शिऊड़ के लिये रवाना करा दिया। तब कहीं श्यामपुकुर की भीड़ बन्द हुई और श्रीरामकृष्ण को विश्राम मिला। कुछ दिनों तक शिऊड़ में रहकर हृदय के साथ श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर वापस आये।

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव

गुरुभाव ।

७—गुरुभाव और गुरु ।

(प्रास्ताविक)

" सांचा तैयार हो गया है—अपना २ जीवन उसमें ढाल कर गढ़ा लो ! "

" धर्म की प्राप्ति कैसे हो, ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो, इन विचारों से व्याकुल होकर जो यहां आवेंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे । "

" साधक जन्म भर परिश्रम करके बड़े कष्ट से एक दो भावों में सिद्ध हो सकता है, पर यहां तो एक ही साथ एक ही पात्र के आधार में वैसे १९ भाव रहते हैं । "

" हम सरकारी नौकर हैं । श्री जगदम्बा के साम्राज्य में जहां कहीं बलवा मचा होता है वहां हमें दौड़कर जाना पड़ता है । "

" प्रातःकाल मेरा मन सारे जगत भर में व्याप्त रहता है इसलिये उस समय मेरा स्मरण किया करो । "

"माता कहती हैं कि गांव २ में घर २ में तेरा आसन रहेगा।"

"जो राम और कृष्ण (हुआ था) वही अब राम-कृष्ण होकर आया है।"

"और दो सौ वर्ष के बाद वामव्य दिशा की ओर जाना पड़ेगा।"

—श्रीरामकृष्ण।

श्रीरामकृष्ण में गुरुभाव का प्रकाश बिल्कुल बचपन से ही दिखाई देता है; तथापि यह निश्चित है कि यौवन में निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसका पूर्ण विकास हुआ। बड़े २ अवतारी पुरुषों के चरित्र की ओर दृष्टि डालने से मालूम पड़ता है कि उनमें ज्ञान का प्रकाश बाल्यकाल से ही था। ज्ञान प्राप्ति के बाद जैसा आचरण होना चाहिये, वैसा आचरण उनके बचपन में ही था। जो यथार्थ गुरु होता है उसमें गुरुत्व के लक्षण बाल्यकाल में भी पाये जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि "मनुष्य किसी को अपना गुरु या नेता नहीं चुनते; जो गुरु या नेता होता है वह तो गुरुत्व का अधिकार साथ लेकर ही जन्म ग्रहण करता है।"

श्रीरामकृष्ण के साधनयज्ञ की समाप्ति के बाद वे गुरुपदवी पर अधिष्ठित हुए, और उस समय उनके हाथ से लोक-कल्याण के महान कार्य किस तरह सहज लीला से होते गये यह लिखने के पूर्व उनके अलौकिक गुरुभाव के रहस्य को ठीक २ समझने के लिये कुछ बातों पर विचार करना आवश्यक है। गुरुभाव क्या है? किसी महापुरुष में उसका पूर्ण विकास होना कब सम्भव होता है?

निर्विकल्प समाधि किसे कहते है ? और उसकी प्राप्ति के बाद मनुष्य की अवस्था कैसी हो जाती है ?—इत्यादि बातों की मीमांसा करना आवश्यक है।

जिन्होंने श्रीरामकृष्ण को एक दो बार थोड़ा ही देखा हो और जिनका उनसे विशेष परिचय न हुआ हो, वे उनके अलौकिक चरित्र की बातें उनके शिष्यों से सुनकर चकित हो जाते थे और उनको वे बातें सत्य भी नहीं मालूम पड़ती थीं। वे सोचते थे कि "हमने भी उन्हें देखा है पर हमें तो उनमें कोई अलौकिकता नहीं दिखाई दी। वे तो बड़े गरीब और नम्र मालूम पड़े, जो दिखाई दे उसे पहिले से ही प्रणाम करते हैं, कोई उनको गुरु कहे तो उन्हें वह सहन नहीं होता था, वे तुरन्त कह बैठते थे —'कौन किसका गुरु और कौन किसका शिष्य है ? ईश्वर ही एक मात्र गुरु है, वही कर्ता है और कराने वाला है, मैं तो नीच स भी नीच हूं, तुम्हारे दासों का दास हूं, तुम्हारे शरीर के एक छोटे से केश के समान मै हूं !'—ऐसा कहकर तुरन्त उसके पैरों पर गिरने में भी कमी नहीं करते थे। ऐसे दीन और गरीब मनुष्य को यदि तुम सर्व शक्तिमान् कहते हो, तो इसे क्या कहा जावे और इस पर विश्वास भी कैसे किया जावे ?"

और सचमुच ही जब श्रीरामकृष्ण को साधारण रूप से देहभान रहता था उस समय, सभी प्राणीमात्र में ईश्वर पूर्ण रूप से भरा हुआ है, यह निश्चय उनमें इतना दृढ़ था कि वे अपने को केवल मनुष्य का ही नहीं वरन् सभी प्राणीमात्र का दास समझते थे और वे सचमुच इसी भावना से सब के पैरों की धूलि ग्रहण करने में भी नहीं हिचकते थे। उस समय वे गुरु कहलाना बिल्कुल नापसन्द करते थे, परन्तु भावावस्था में या समाधि-अवस्था में उनके तेजोमय मुखमण्डल को देखकर कौन कहता कि—"अपने को दीनातिदीन, दासानुदास कहने वाले श्रीरामकृष्ण यही हैं ?" उस अद्भुत भावावेश में श्री जगदम्बा के हाथ के यंत्ररूप बनकर जब वे स्पर्श करके या केवल इच्छा मात्र से किसी का देहभान नष्ट करके उसे समाधि लगा देते थे, या उसके हृदय में भगवत्प्रेम का प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न कर देते थे, या अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उसके मन की मलीनता और संसार की आसक्ति नष्ट करके उसके मन को—पहिले कभी न हुआ हो इस तरह—ईश्वर चिन्तन में तल्लीन कर देते थे, तब तो उनकी अपूर्व

शक्ति को देखकर निःसन्देह यह निश्चय हो जाता कि ये वही श्रीरामकृष्ण नहीं है। ये तो यथार्थ में अज्ञान से अन्ध हुए, त्रिविध तापों से तप्त, भवरोग से ग्रसे हुए, असहाय, दीन, अनाथ मनुष्यों के गुरु और त्राता हैं; और उनकी इसी दिव्य शक्ति को जानकर उनके भक्त उन्हें गुरु, कृपा सागर, भगवान् आदि विशेषणों से सम्बोधित करते थे। दिखने में दो परस्पर विरोधी गुण—दीनता और सर्व शक्तिमत्ता—श्रीरामकृष्ण के सिवाय और किसी दूसरे में कभी दिखाई नहीं देते थे। इस प्रकार की दो परस्पर विरोधी बातें एक ही जगह कैसे रह सकती हैं यह समझने के लिये निर्विकल्प समाधि और सर्वात्मभाव पर यहां पर थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है।

प्रः—निर्विकल्प समाधि किसे कहते हैं?

उः—मन को संकल्प विकल्प रहित अवस्था में पहुँचा देना ही 'निर्विकल्प समाधि-अवस्था' कहलाती है।

प्रः—संकल्प विकल्प का क्या अर्थ है?

उः—बाह्य जगत के रूपरसादि विषयों का ज्ञान और उनका अनुभव, सुख दुःखादि ऊर्मि, कल्पना, विचार, अनुमान इत्यादि मानसिक व्यापार और इच्छा, और 'मैं ऐसा करूंगा', 'ऐसा समझूंगा', 'इसका भोग करूंगा', 'इसका त्याग करूंगा' इत्यादि विविध मनोवृत्तियां, —इन सब को संकल्प विकल्प कहते हैं।

प्रः—ये वृत्तियां किस कारण उत्पन्न होती हैं?

उः—"मैं" "मैं" का ज्ञान या बोध रहने के कारण ये वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। जब "मैं"-पन का ज्ञान या "अहं" कार स्थायी रूप से नष्ट हो जाता है या कुछ समय के लिये ही नष्ट हो जाता है, तब उस समय मन में कोई भी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती।

प्रः—मूर्च्छा में या गाढ़ निद्रा में भी "मैं"-पन का बोध नहीं रहता। तो क्या ऐसी ही किसी अवस्था को, निर्विकल्प समाधि कहते हैं?

उः—नहीं। मूर्च्छा या गाढ़ निद्रा की अवस्था में "मैं"-पन का बोध नहीं रहता ऐसी बात नहीं है, यह बोध तो उस अवस्था में भी रहता ही है। इतना ही होता है कि जिस मस्तिष्क रूपी यंत्र की सहायता से मन "मैं" "मैं" करता है उस यंत्र की क्रिया कुछ समय तक थोड़ी बहुत बन्द हो जाती है। परन्तु सब वृत्तियां भीतर समाई हुई ही खलबली मचाती रहती हैं। श्रीरामकृष्ण इसका एक सुन्दर दृष्टान्त देते थे। समूचे मटर के दाने मुँह में भर लेने के बाद जैसे कपोत गले को फुलाकर "गटर-घुम्" आवाज़ करते हैं, उन्हें देखकर तो कोई यह समझ बैठेगा कि इन के मुँह में कुछ नहीं है; पर गले को हाथ से दबाने पर पता लगेगा कि इनके मुँह में मटर के दाने एकदम ठूंस कर भरे हुए हैं।

प्रः—मूर्च्छा या सुषुप्ति में इस प्रकार "मैं"-पन का बोध रहता है यह कैसे समझा जावे?

उः—प्रत्यक्ष फल को देखकर! मूर्च्छा में या सुषुप्ति में हृदय का स्फुरण, हाथ पैर की नाड़ियां, रुधिर का बहाव आदि सभी शारीरिक क्रियाएँ जारी ही रहती हैं, बन्द नहीं होतीं, क्योंकि ये क्रियाएं भी तो, "मैं"-पन के बोध के आश्रय से ही हुआ करती हैं। दूसरी बात यह है कि मूर्च्छा के या सुषुप्ति के बाह्य लक्षण कुछ २ अंशों में यद्यपि समाधि के समान ही दिखाई देते हैं, तथापि उनमें से निकलकर मनुष्य जब सचेत होता है तब उसका ज्ञान या आनन्द वैसा ही रहता है, वह कुछ भी बढ़ा हुआ या घटा हुआ नहीं रहता, उसकी वृत्तियां भी ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। उदाहरणार्थ, कामी मनुष्य का काम ज्यों का त्यों रहता है, क्रोधी मनुष्य का क्रोध जैसा का तैसा बना रहता है, लोभी मनुष्य का लोभ वैसा ही बना रहता है, इत्यादि। पर निर्विकल्प समाधि

अवस्था का अनुभव प्राप्त हो जाने से ये सब वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं, अन्तःकरण असीम आनन्द से पूर्ण हो जाता है और जगत्कारण भगवान् के साक्षात् दर्शन से—"ईश्वर है या नहीं" इत्यादि संशय समूल नष्ट हो जाते हैं।

प्रः—भला, मान लीजिये कि निर्विकल्प अवस्था प्राप्त होकर कुछ समय तक श्रीरामकृष्ण के "मै"-पन का लोप हो गया था, पर उसके बाद क्या हुआ?

उः—इस तरह "मैं"-पन (या अहंभाव) के ज्ञान का लोप हो जाने पर श्रीरामकृष्ण को कारण स्वरूपिणी श्री जगदम्बा का साक्षात् दर्शन हुआ। पर उतने से ही उनकी तृप्ति नहीं हुई, वे सदा सर्वकाल वैसा ही दर्शन करने के हेतु उसी अवस्था में रहने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रयत्न को जारी रखने में कभी २ उनके "मैं"-पन या अहंभाव का पूर्ण लोप होकर शरीर पर मृतक चिन्ह दिखने लगते थे, पर भीतर में श्री जगदम्बा का पूर्ण दर्शन होता रहता था। कभी २ "मैं"-पन का केवल अल्पांश शेष रहकर शरीर पर जीवितावस्था के कुछ लक्षण दिख पड़ते थे और भीतर उनके मन के शुद्ध सत्त्वगुणमय परदे में से श्री जगदम्बा का कुछ बाधायुक्त दर्शन होता रहता था। इस प्रकार कभी "मैं"-पन का पूर्ण लोप और मन की सभी वृत्तियों का पूर्ण लय होकर श्री जगदम्बा का पूर्ण दर्शन होता और कभी "अहं" भाव ('मैं'-पन) का कुछ अंश शेष रहकर कुछ २ चित्तवृत्तियां भी शेष रहतीं और श्री जगदम्बा का झांकी-दर्शन होता—इस तरह का क्रम लगातार छः महीने तक जारी रहा! तदनन्तर श्री जगदम्बा ने कहिये, या श्री भगवान् ने कहिये, या कहिये कि जो विराट् चैतन्य या विराट् शक्ति जगत् रूप से प्रकाशित होकर सर्व चराचर में ओत प्रोत भरकर भी बाकी बचकर भिन्न २ नाम रूप से नानालीला कर रही है उसने ही उनको आज्ञा दी कि "अरे! तु

भावमुखी होकर रह !" " भावमुखी हो " अर्थात् " अहंकार का पूर्ण लोप करके निर्गुणभाव में स्थित मत हो वरन् ' जिससे इन अनन्त भावों की उत्पत्ति होती है वह विराट् अहंकार ही मैं हूं, उसकी इच्छा ही मेरी इच्छा है, उसका कार्य ही मेरा कार्य है--' यही भावना, सदा सर्वकाल मन में धारण करते हुए अपना जीवन बिता और लोक-कल्याण कर "--ऐसा आदेश दिया। इस अवस्था में पहुँच जाने पर मैं अमुक का पिता हूं, अमुक का पुत्र हूं, मैं ब्राह्मण हूं,--इत्यादि सब बातें मन से बिल्कुल साफ़ दूर हो जाती हैं और " मैं वही ' विश्वव्यापी मैं ' हूं "--इसी बात का अनुभव सदा सर्वकाल जागृत रहता है। श्रीरामकृष्ण बारम्बार कहते थे--" भाइयों ! मैं इसका पुत्र हूं, उसका पिता हूं, मैं ब्राह्मण हूं, या शूद्र हूं, मैं पण्डित हूं, मैं धनवान् हूं, यह सब ' कच्चा ' अहंकार है--इसी से मनुष्य बन्धन में पड़ता है; ऐसे अहंकार का त्याग करना चाहिये ! और ' मैं भगवान् का दास हूं, मैं उसका भक्त हूं, मैं उसका अपत्य हूं, मैं उसका अंश हूं, यह ' पक्का ' अंहकार है; इसी को सदैव मन में रखना चाहिये। "

कहना न होगा कि इस तरह निरन्तर भावमय रहकर विराट् अहंकार के साथ अपनी एकता का जब वे अनुभव करते रहते थे तभी वे श्री जगदम्बा के निर्गुणभाव से कुछ नीचे उतरे हुए रहते थे। परन्तु इस अवस्था में भी उनका एकत्व का अनुभव इतना दृढ़ रहा करता था कि उन्हें यह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता था कि इस ब्रह्माण्ड का सभी व्यवहार मैं ही कर रहा हूं ! इस अवस्था का अत्यल्प अनुभव भी या उसकी केवल कल्पना भी अत्यन्त अद्भुत रहा करती है। उनके सर्वात्मभाव के सम्बन्ध में एक दो उदाहरण यहां दे देने से पाठकों को इस बात की कुछ २ कल्पना हो सकेगी।

एक बार वर्षा ऋतु में काली मन्दिर के अहाते में एक ओर सुन्दर हरी घास उगी हुई थी। एक दिन उस सुन्दर दृश्य को देखते २ श्रीरामकृष्ण इतने तन्मय हो गये कि वे उस स्थान से एक-रूप होकर उसे अपने शरीर का ही एक भाग

समझने लगे। इतने में ही एक मनुष्य उस जगह की घास पर से चलकर दूसरी ओर गया। श्रीरामकृष्ण कहते थे—" छाती पर से किसी के चलने से जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा मुझे उस समय हुई और मेरी छाती कुछ समय तक लाल हो गई ! "

उसी तरह और एक दिन काली मन्दिर के घाट पर खड़े हुए श्रीरामकृष्ण भावावेश में गंगा जी की ओर देख रहे थे। उसी समय दो नौकाएँ घाट पर आ लगीं और उनमें से एक नौका पर दो केवटों में बड़ा झगड़ा शुरू हो गया। बढ़ते २ मारपीट भी होने लगी। इस दृश्य को भावावेश में तन्मय होकर देखते २ श्रीरामकृष्ण ज़ोर २ से चिल्लाने लगे। उनकी आवाज़ काली मन्दिर में हृदय के कान में पड़ी, और वह वहां पर दौड़ता हुआ आया और देखता क्या है कि श्रीरामकृष्ण की पीठ लाल होकर उसमें लकड़ी की मार के निशान हो गए हैं ! यह देखकर क्रोध से लाल होकर थर २ कांपते, दांत-होंठ चबाते हुए हृदय ज़ोर से बोला—" मामा, मामा, आपको किसने मारा सो मुझे बताइये। मैं इसी क्षण जाकर उसका प्राण ले लूंगा। " तब थोड़ी देर के बाद कुछ शान्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने अपनी पीठ पर के निशान का कारण हृदय को बताया। उसे सुनकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ !

इस सर्वात्मभाव के नीचे माया के राज्य में जब श्रीरामकृष्ण का मन उतरता था तब उनके मन में मैं जगदम्बा का दास, मैं उसका भक्त, अथवा मैं उसका अपत्य, या मै उसका अंश हूं यह भाव सदैव जागृत रहता था। इस अवस्था के बहुत ही नीचे अविद्या माया का काम-क्रोध, लोभ, मोह आदि के बल पर चलने वाला राज्य रहता है।

निरन्तर अभ्यास और ईश्वर चिन्तन के द्वारा इस राज्य का पूर्ण त्याग कर देने के कारण श्रीरामकृष्ण का मन इस राज्य की सीमा में कभी नहीं उतरता था; अथवा यों कहिये कि श्री जगदम्बा ही उनको उसमें उतरने नहीं देती थीं। क्योंकि वे सदा कहा करते थे कि—" जिसने अपना सब भार माता पर

डाल दिया हो उसका एक भी कदम माता कभी भी इधर उधर पड़ने नहीं देती।"

इस वर्णन से स्पष्ट है कि निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद श्रीरामकृष्ण का कच्चा अहंकार बिल्कुल नष्ट हो गया और अहंकार का जो कुछ भी थोड़ा सा अंश उनमें शेष रह गया था वह विराट् अर्थात् पक्के अहंकार से चिरसंयुक्त हो गया था। इसी कारण वे सभी प्रकार के लोगों के सभी प्रकार के भावों को सहज ही जान सकते थे; क्योंकि मनुष्य के मन की सब भावतरंगें भी तो इसी विराट् अहंकार के आश्रय से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार की उच्च अवस्था में "भगवान् का अंश–या अपत्य–मैं हूं" यह भाव भी उनके मन से समूल लुप्त होकर उसके स्थान में विराट् अहंकार अथवा श्री जगदम्बा का अहंकार स्फुरण होकर उनका निग्रहानुग्रह सामर्थ्य गुरु रूप से प्रकट हो जाता था! ऐसे समय में वे "दीनातिदीन", "दासानुदास" नहीं रहते थे। उस समय उनकी बोल चाल, दूसरों के साथ बर्ताव व्यवहार बिल्कुल भिन्न प्रकार के हो जाते थे। उस समय वे प्रत्यक्ष कल्पतरु ही बनकर—"तुझे क्या चाहिये?"— ऐसा अपने भक्त से पूछते थे। मानो अपने भक्त की सब इच्छा अपनी अमानुषी शक्ति के द्वारा पूर्ण करने के लिये ही बैठे हों! दक्षिणेश्वर में हर शनिवार और मंगलवार को और विशेष २ पर्व के दिन उन्होंने इस प्रकार भावाविष्ट होकर अनेकों भक्तों पर कृपा की है। सन् १८८६ की जनवरी में काशीपुर में उनकी अमानुषिक शक्ति के सम्बन्ध की एक बड़ी अद्भुत घटना हुई; जिसका वर्णन नीचे विस्तार-पूर्वक दिया जाता है।

श्रीरामकृष्ण के गले में कुछ रोग हो जाने के कारण डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार की सलाह से इलाज की सुविधा और बगीचे की शुद्ध हवा से लाभ उठाने के लिये उनके भक्त लोगों ने उनको कलकत्ता के पास काशीपुर में गोपाल बाबू के बगीचे में किराये के बंगले में रखा था। वहां डॉक्टरों का इलाज जारी था। उससे कुछ लाभ भी होता दिखाई देता था। तथापि यहां आने के बाद एक दिन भी श्रीरामकृष्ण ऊपर की मन्जिल से नीचे बगीचे में घूमने आदि के लिये नहीं उतरे थे। आज उन्हें और दिनों की अपेक्षा अच्छा मालूम होता था।

इसलिये उन्होंने बगीचे में घूमने की इच्छा प्रकट की। आज श्रीरामकृष्ण नीचे आने वाले हैं यह जानकर उनकी भक्त मण्डली को बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीरामकृष्ण की सेवा में उनके सन्यासी भक्तगण सदा उपस्थित रहते थे। गृहस्थ भक्तों के पीछे संसार का उपद्रव लगे रहने के कारण वे लोग हर वक्त वहां नहीं रहते थे। वे आना जाना किया करते थे और श्रीरामकृष्ण की सेवा में रहने वाले लोगों के खाने पीने का सब प्रबन्ध किया करते थे।

जनवरी की पहिली तारीख (सन् १८८६) की छुट्टी के कारण काशीपुर में बहुत से भक्तगण जमा थे। दोपहर के ३ बजे का समय रहा होगा। श्रीरामकृष्ण रेशमी किनारी की धोती और कुरता पहिने, शरीर पर लाल किनार की चादर डाले, सिर पर कनटोप और पैरों में जूते पहिनकर स्वामी अद्भुतानन्द के साथ धीरे २ ऊपर से नीचे उतरकर आये और पश्चिमी द्वार से बगीचे में घूमने के लिये गये। कुछ गृहस्थ भक्त लोग बड़े आनन्द के साथ उनके पीछे २ चलने लगे। नरेन्द्र आदि तरुण भक्त लोग रातभर भजन जप ध्यान आदि करते हुए जगते रहे थे, इसलिये वे लोग एक कोठरी में सो रहे थे। श्रीरामकृष्ण के साथ बहुत से लोग हो जाने से उन्हें और किसी साथी की आवश्यकता न रहने के कारण स्वामी अद्भुतानन्द कुछ समय के बाद लौट आये और श्रीरामकृष्ण का बिछौना, कोठरी आदि को झाड़कर साफ़ करने के कार्य में लग गये।

गृहस्थ भक्तों में से श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष का ईश्वरानुराग उस समय बड़ा प्रबल था। उनके अद्भुत विश्वास की बड़ी प्रशंसा करते हुए एक बार श्रीरामकृष्ण बोले—"गिरीश का विश्वास पांच रुपये पांच आने है। उसकी अवस्था को देखकर लोग आगे चकित हो जावेंगे।"

विश्वास और भक्ति की प्रबलता के कारण गिरीशबाबू श्रीरामकृष्ण को साक्षात् ईश्वर मानते थे। वे कहते थे—"जीवों का उद्धार करने के लिये भगवान् ने कृपालुता से यह अवतार धारण किया है" और वे अपने इस दृढ़ विश्वास को

दिल खोलकर हर किसी के पास प्रकट रूप से बता दिया करते थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ऐसा करने से रोका भी, पर वे उस पर ध्यान ही नहीं दिया करते थे।

उस दिन और लोगों के साथ गिरीश भी वहां आये हुए थे और बाग में ही एक आम के पेड़ के नीचे लोगों के साथ बातें करते बैठे थे। टहलते २ श्रीरामकृष्ण भी उसी स्थान पर पहुँचे और वहां लोगों के साथ गिरीश को देखकर बोले—" गिरीश! तूने मुझमें ऐसा क्या देखा है कि जिसके कारण हर किसी से तू कहता फिरता है कि ये अवतार हैं?—इत्यादि "

अचानक उनके ऐसे प्रश्न को सुनकर भी गिरीशचंद्र नहीं घबड़ाये। वे झट उठकर रास्ते पर आये और हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण के पैरों के पास घुटने टेककर बैठ गये और उनके मुख की ओर देखते हुए गद्गद कंठ से बोले—" व्यास, वाल्मीकि जैसे महर्षि भी जिनकी महिमा वर्णन करते २ थक गये, उनके सम्बन्ध में मैं यःकश्चित पामर और अधिक क्या कह सकता हूं? "

गिरीशचंद्र के ऐसे अद्भुत विश्वासयुक्त उद्गार को सुनकर श्रीरामकृष्ण का सर्वांग रोमाञ्चित हो गया, हृदय भर आया, और मन एकाएक उच्च भूमिका पर आरूढ़ हो जाने से उन्हें गहरी समाधि लग गई! उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलकने लगा। उनके उस तेजोमय मुखमण्डल को देखकर गिरीशचंद्र की भी भक्ति की बाढ़ आ गई, और " जय रामकृष्ण " " जय रामकृष्ण " कहते हुए ज़ोर २ से जयघोष करते हुए वे उनकी पदधूलि अपने मस्तक पर चढ़ाने लगे।

यह क्रम जारी था कि श्रीरामकृष्ण को अर्धबाह्य दशा प्राप्त हो गई और उनके तेजःपुंज मुखमण्डल पर हास्य झलकने लगा। उन्होंने पास में खड़े हुए भक्तों की ओर देखकर कहा—" तुम लोगों को और क्या कहूँ? तुम सब को चैतन्य प्राप्त हो "—इस वरदान की वाणी को सुनकर भक्तगण भी अतिशय आनन्द में " जय रामकृष्ण! जय रामकृष्ण! " का जयघोष करते हुए कोई उन्हें प्रणाम करने लगा, कोई उन पर फूल चढ़ाने लगा और कोई उनकी पद-

धूलि ग्रहण करने लगा। एक भक्त उनके पैरों पर सिर रखकर खड़ा हो गया; उस समय उसी अर्धबाह्य अवस्था में ही उसके वक्षःस्थल पर नीचे से ऊपर हाथ फिराते हुए श्रीरामकृष्ण बोले—"तुझे चैतन्य प्राप्त हो।" दूसरे भक्त के उनके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम करके खड़े होते ही पुनः श्रीरामकृष्ण ने वैसा ही किया। तीसरे के साथ वैसा ही, चौथे को वैसा ही। इस तरह पैरों पर मस्तक रखने वाले प्रत्येक को उसी प्रकार स्पर्श करके आशीर्वाद देने लगे और उनके अद्भुत स्पर्श से प्रत्येक के अंतःकरण में कुछ अपूर्व भावान्तर उत्पन्न होकर कोई हँसने लगा कोई ध्यान में मग्न हो गया और किसी का हृदय आनन्द से पूर्ण होकर वह उन अहेतुक कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त करके धन्य होने के लिये और सब लोगों को ज़ोर २ से पुकारने लगा। इस प्रकार चिल्लाने और जयघोष की आवाज़ को सुनकर सोये हुए भक्त लोग जागकर, और काम में लगे हुए लोग हाथ का काम छोड़ २ कर वहां पर दौड़ते आ पहुँचे और वे वहां जाकर क्या देखते हैं कि रास्ते में ही श्रीरामकृष्ण को घेरकर पागलों का एक झुण्ड खड़ा हैं। यह दृश्य देखते ही वे लोग ताड़ गये कि दक्षिणेश्वर में किसी व्यक्ति विशेष पर कृपा करने के लिये श्रीरामकृष्ण की दिव्यभावावेश में जो लीला होती थी, आज वही लीला यहाँ सभी पर एक साथ कृपा करने के लिये हो रही है। उन लोगों के आते ही श्रीरामकृष्ण का वह दिव्य भावावेश कम हो गया और उन्हें साधारण भाव प्राप्त हो गया। तदनन्तर श्रीरामकृष्ण के उस हस्तस्पर्श और आशीर्वाद से किसको कौनसा अनुभव हुआ यह पूछने पर पता लगा कि किसी के हृदय में आनन्द का प्रबल स्रोत एकाएक उमड़ पड़ने से वह बेहोश हो गया। किसी २ को अपने इष्ट देव का दर्शन प्राप्त हुआ, किसी को अपने हृदय में एक अपूर्व शक्ति का संचार होता मालूम हुआ, किसी के मन की चंचलता नष्ट होकर वह बिल्कुल एकाग्र चित्त हो गया, और किसी को आँखें बन्द कर लेने पर एक अद्भुत ज्योति का दर्शन मिला। इन भिन्न २ दर्शनों के सिवाय प्रत्येक को अपने मन में अत्यन्त शांति और अपूर्व आनन्द का अनुभव प्राप्त हुआ। इस सारी मण्डली में केवल दो * जनों को ही उस समय "अभी से

* बाद में श्रीरामकृष्ण ने उन दोनों पर भी कृपा की।

नहीं" कहते हुए श्रीरामकृष्ण ने स्पर्श नहीं किया और केवल वे दोनों ही इस महत्पर्व के दिन कोरे ही रह गये। अस्तु—

इस प्रकार के अनेक उदाहरण बताये जा सकते हैं। इन सब बातों से यही दिखता है कि कच्चे अहंकार का पूर्णत्याग करने से ही श्रीरामकृष्ण में यह असली दिव्यशक्ति पूर्ण रूप से प्रकट हो गई थी और कच्चे अहंकार के पूर्ण त्याग के कारण ही उनमें "लोकगुरु", "जगद्गुरु" के भाव का इतना अपूर्व और पूर्ण विकास हो गया था। मायाबद्ध मनुष्य के मन में से सब प्रकार की अज्ञानरूप मलिनता को हटाने वाली दिव्यशक्ति को ही "गुरुभाव" और यह शक्ति जिस शरीर के आश्रय से प्रकट हो उसे ही "गुरु" शास्त्रों में कहा गया है।

ऊपर बताये अनुसार मनुष्य की अज्ञान-मलिनता को दूर करने की शक्ति साक्षात् परमेश्वर की ही होने के कारण वह जिस शरीर के आश्रय से प्रकट होती है उस शरीर को अर्थात् गुरु को साक्षात् परमेश्वर ही मानने का उपदेश शास्त्रों ने दिया है। अग्नि और उसकी दाहक शक्ति जैसे एक हैं और वे अलग २ नहीं की जा सकतीं, उसी तरह यह ईश्वरीशक्ति और जिसके आश्रय से वह शक्ति प्रकट होती है वह शरीर भी एक ही हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुस्साक्षात् परब्रह्म.....

आदि गुरु और परमेश्वर का ऐक्य बताने वाले वचनों के द्वारा शास्त्रों ने गुरुभक्ति की इतनी महिमा बतलाई है।

परन्तु भक्तिमार्ग के नये साधक को गुरु के प्रति प्रारम्भ से ही साक्षात् परमेश्वर के समान आदरभाव नहीं रहता। वह सोचता है कि "गुरुभाव पर श्रद्धा रखने से गुरुभाव की भक्ति सीखी जा सकेगी, पर जिस देह के आश्रय से वह भाव प्रकट होता है उसके प्रति हमारे मन में परमेश्वर के समान श्रद्धा कैसे उत्पन्न हो?" ऐसे लोगों से इतना ही कहना है कि तुमसे न बने तो मत करो पर अपने को आप ही धोखा मत दो। शक्ति या भाव और जिसके आश्रय से

ये दोनों प्रकाशित होते है वह आधार इन दोनों वस्तुओं को आपने कभी अलग २ देखा है ? यदि नहीं देखा है तो फिर अग्नि और उसकी दाहक शक्ति को अलग २ करके एक का ग्रहण और दूसरे का त्याग आप कैसे करना चाहते हैं ? हम व्यवहार में भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि हम जिस पर प्रेम करते हैं उसकी किसी सामान्य वस्तु पर भी हमारा प्रेम हुआ करता है और उसे हम सिर पर रख लेते हैं। वह जिस स्थान से चलकर गया हो वहां की मिट्टी भी हमें पवित्र मालूम पड़ती है। तब फिर जिस शरीर का आश्रय लेकर साक्षात् परमेश्वर हमारी पूजा ग्रहण करके हम पर कृपा करता है और हमारे सारे अज्ञानमल को दूर करके हमें चिरशांतिसुख का अधिकारी बनाता है, उस शरीर के प्रति साक्षात् परमेश्वर के समान श्रद्धा-भक्ति रखने का उपदेश शास्त्रों ने दिया है तो इसमें आश्चर्यजनक कौन सी बात है ?

श्रीरामकृष्ण कहते थे—" अत्यन्त एकनिष्ठ भक्त को अपने गुरू के प्रति प्रेम तो होगा ही, पर गुरू का कोई नातेदार या गुरू के गांव का भी कोई मनुष्य मिल जाने से तो उसे एकदम गुरू का स्मरण होकर वह उसको गुरु कहकर प्रणाम करेगा ! भक्त की गुरुभक्ति इतनी उच्च अवस्था में पहुँच जाने पर उसको अपने गुरू में एक भी दोष नहीं दिखाई देता। गुरु जो कहें वही उसके लिये प्रमाण हुआ करता है, उसकी दृष्टि ही उस तरह की हो जाती है ! पांडुरोग वाले मनुष्य को जैसे सब कुछ पीला ही दिखाई देता है, वैसे ही उसको हो जाता है। उसको सब तरफ़ 'ईश्वर ही सब कुछ हो गया है' ऐसा दिखने लगता है। "

दक्षिणेश्वर में एक दिन श्रीरामकृष्ण अपने एक सरल परन्तु वादप्रिय स्वभाव के शिष्य को कोई बात समझा रहे थे, पर वह बात उसकी विचार शक्ति में नहीं उतरती थी अर्थात् उसकी बुद्धि को वह बात जँचती नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के तीन चार बार समझाने पर भी जब उसका तर्क और वाद बंद नहीं हुआ, तब कुछ क्रुद्ध से होकर परन्तु मीठे शब्दों में वे उससे बोले- " तू कैसा मनुष्य है रे ? मैं स्वयं कहता जा रहा हूं तो भी तुझे निश्चय नहीं होता ? " तब तो उस शिष्य का गुरु प्रेम जागृत हो गया और वह कुछ लज्जित

होकर बोला—" महाराज ! भूल हुई, प्रत्यक्ष आप ही कह रहे हैं और मैं न मानूं यह कैसे हो सकता है ? इतनी देर तक मैं अपनी विचार शक्ति के बल पर व्यर्थ वाद कर रहा था । " इसे सुनकर प्रसन्न होकर हँसते हँसते श्रीरामकृष्ण बोले—" गुरु भक्ति कैसी चाहिये—बताऊं ? गुरु जैसा कहे वैसा ही तुरन्त उसे दिखने लगना चाहिये । ऐसी ही भक्ति अर्जुन की थी ! एक दिन रथ में बैठकर अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण योंही सहज घूम रहे थे कि एकदम आकाश की ओर देख कर वे बोले—' अहाहा ! अर्जुन यह देखो कितना सुन्दर कपोत उड़ता जा रहा हैं ? ' आकाश की ओर देखकर अर्जुन तुरन्त बोला, ' हां कृष्ण जी, यह कितना सुन्दर कपोत है ? ' परन्तु पुनः श्रीकृष्ण ऊपर की ओर देखकर बोले—' नहीं, नहीं, अर्जुन ! यह तो कपोत नहीं है ! ' अर्जुन भी पुनः उधर देखकर बोला—' सचमुच, कृष्ण जी ! यह तो कपोत नहीं मालूम पड़ता ! ' अब तू इतना ध्यान में रख कि अर्जुन बड़ा सत्यनिष्ठ था, व्यर्थ श्रीकृष्ण की चापलूसी करने के लिये उसने ऐसा नहीं कहा । परन्तु श्रीकृष्ण के वाक्य पर उसकी इतनी भक्ति और श्रद्धा थी कि श्रीकृष्ण ने जैसा कहा बिल्कुल वैसा ही अर्जुन को दिखने लगा । " अस्तु—

यह ईश्वरी शक्ति सभी मनुष्यों के मन में कम या अधिक प्रमाण में रहा करती है। इसलिये गुरुभक्तिपरायण साधक अन्त में ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि उस समय यह शक्ति स्वयं उसमें ही प्रकट होकर उसके मन की सभी शंकाओं का समाधान कर देती है और अत्यन्त गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों को उसे समझा देती है। तब तो उसे अपने संशयों को दूर कराने के लिये किसी दूसरी जगह जाना नहीं पड़ता । इस अवस्था के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते हैं:—" अन्त में मन ही गुरु बन जाता है । " पर उस मन में और अपने सदा के मन में बहुत अन्तर रहा करता है । अपना सदा का मन अशुद्ध और अपवित्र रहते हुए भोगसुख, कामकंचनासक्ति के पीछे पड़ा रहता है और वह मन शुद्ध और पवित्र होकर ईश्वरी शक्ति प्रकट करने का यन्त्रस्वरूप बन जाता है । और भी वे कहते थे—" गुरु अर्थात् जैसी सखी; जब तक राधा की श्रीकृष्ण से भेंट नहीं हुई थी, तब तक सखी का काम समाप्त नहीं हुआ था । श्री गुरु अपने शिष्य का हाथ पकड़कर उसे उच्च और उच्चतर भावप्रदेश में ले जाते ले जाते उसके

इष्ट देव के सामने लाकर कहते हैं 'शिष्य, देख यह तेरा इष्ट देव!' और इतना कहकर श्री गुरु स्वयं अन्तर्धान हो जाते हैं।"

एक दिन श्रीरामकृष्ण के मुख से गुरुभाव के इस प्रकार के रहस्य को सुनकर उनका एक अत्यन्त प्रेमी भक्त बोल उठा—"तब फिर अन्त में एक दिन श्री गुरु का और अपना विच्छेद ही होना है न?" इस भावना से उसके हृदय में बड़ी व्यथा होने लगी और वह पूछने लगा—"महाराज! उस समय गुरु जी कहां चले जाते हैं?" श्रीरामकृष्ण बोले—"गुरु तो उस इष्ट देव के साथ ही एक-रूप हो जाते हैं। गुरु, कृष्ण और वैष्णव* ये तीनों ही एक हैं—एक के ही ये तीन रूप हैं।"

---

* गुरु, भगवान् और भक्त।

"भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु, चतुर्नाम वपु एक।"

८—श्रीरामकृष्ण का गुरुभाव।

गौरी कहता था—" आपके अनुभव वेदवेदान्त को छोड़कर बहुत आगे बढ़ गये हैं ! "

मुदमंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

विधि हरिहर कवि कोविद बाणी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥

सो मो सन कहि जात न कैसे।
शाकवणिक मणिगुणगण जैसे॥

वन्दौं गुरुपदकंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

—तुलसीदास।

शास्त्रों में कहा है कि क्षुद्र अहंकार का सम्पूर्ण त्याग करके ईश्वरी भाव में ही सदा सर्वकाल रहने से जगद्गुरु और ब्रह्मज्ञ पद में पहुँचा हुआ पुरुष सर्वज्ञ होता है। " उनके मन में साधारण मनुष्य के समान मिथ्या संकल्प

कभी उदय नहीं होता। उनके मन में जिस समय जो विषय जानने की इच्छा होती है वह विषय उसी समय उनकी अन्तर्दृष्टि के सामने प्रकाशित हो जाता है और उस विषय के तत्त्व को वे सहज रीति से जान सकते हैं।" इसे सुनकर शास्त्रों के इस कथन का भाव न समझते हुए हमारे मन में कितने ही तर्क-वितर्क उत्पन्न होने लगते हैं। हम कहने लगते हैं-"यदि यह बात सत्य है तो पूर्वकालीन ऋषि जड़-विज्ञान के सम्बन्ध में इतने अज्ञ क्यों थे? हाइड्रोजन और ऑक्सिजन इन दोनों वायुरूपी पदार्थों को किसी विशेष प्रमाण में एकत्र करने से पानी बन जाता है यह बात कितने ब्रह्मज्ञ ऋषियों को मालूम थी? चार पांच महीनों का मार्ग विद्युत् की सहायता से केवल ४-५ सेकंडों में तय किया जा सकता है इस बात के सम्भव होने का ध्यान कितने ऋषियों को था? अथवा और भी दूसरे शास्त्रीय आविष्कार कितने ऋषियों ने किये थे या कितनों ने ऐसे आविष्कार करने का प्रयत्न किया था?"

श्रीरामकृष्ण के चरणों का आश्रय मिल जाने पर हम यह समझने लगे कि शास्त्रों मे बताई हुई इस बात को इस दृष्टि से देखने में उसका कोई अर्थ नहीं निकल सकता; परन्तु शास्त्रों ने जिस भाव से यह बात बताई है उसी दृष्टि से उस पर विचार करने से उसका ठीक ठीक अर्थ लग सकता है। श्रीरामकृष्ण इसके सम्बन्ध में कहते थे-"चूल्हे पर भात पक रहा है, वह ठीक पका कि नहीं यह जानने के लिये आप क्या करते हैं? करछुल की डंडी पर उसमें से ४-५ चांवल के दाने निकालकर दबाकर देखते हैं न? तब सारा भात पक गया यह कैसे निश्चय करते है? उसी तरह यह सारा संसार नित्य है कि अनित्य, सत् है कि असत्, यह भी, उसमें से चार पांच बातों की परीक्षा करके, निश्चय किया जा सकता है। देखो न, मनुष्य जन्म लेता है, कुछ दिन जीता है, बाद में मर जाता है। पशुओं की भी यही दशा होती है। पेड़ों का भी यही हाल है-बस, इसी तरह देखते २ समझ में आ जाता है कि जिन २ वस्तुओं का नाम है और रूप है उन सब की यही गति हुआ करती है। इस तरह यह जान पड़ा कि सारे जगत का यही स्वभाव है। पृथ्वी, सूर्यलोक, चन्द्रलोक सभी के नाम हैं। अतः इनकी भी यही गति है। तब तुम जगत के सभी वस्तुओं का स्वभाव जान गये न? इस प्रकार संसार अनित्य है, असत् है, यह बात निःसंशय समझ

लेने पर तुम्हारा मन संसार से उचट कर (विरक्त होकर) तुम्हारी सारी सांसारिक वासनाएं नष्ट हो जावेंगी और संसार की अनित्यता को समझकर तुमने उसका त्याग कर दिया कि तुम्हें जगत्कारण ईश्वर का साक्षात्कार हो जावेगा। अब इस तरह जिसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त हो गया, वह सर्वज्ञ हुआ या नहीं सो तुम्हीं बताओ। "

श्रीरामकृष्ण के इस कथन से समझ में आ गया कि सचमुच ही एक दृष्टि से वह सर्वज्ञ हो गया। ज्ञान २ लोग कहते हैं। "ज्ञान" का क्या अर्थ है? किसी पदार्थ के आदि, मध्य और अन्त को देख सकना या उसकी जानकारी प्राप्त कर लेना और उस पदार्थ की उत्पत्ति जिससे हुई है उसे भी देख सकना या जान सकना—इसे ही हम उस पदार्थ का ज्ञान कहा करते हैं। तब फिर पूर्वोक्त रीति से संसार को जानने या समझ लेने को ज्ञान क्यों न कहा जावे? इसके सिवाय यह ज्ञान जगत के अन्तर्गत सभी पदार्थों के सम्बन्ध में समान रूप से सत्य है। अतः यही कहना होगा कि उसे जगत के अन्तर्गत सभी पदार्थों का ज्ञान है। और इस प्रकार का ज्ञान जिसको हो गया उसे सचमुच सर्वज्ञ कहना चाहिये। इन बातों को देखते हुए शास्त्रों का कहना कुछ झूठ नहीं है।

शास्त्रों के कथन का भावार्थ इस प्रकार है। किसी भी विषय पर मन को एकाग्र करने से उस विषय का ज्ञान हमें प्राप्त होता है; यह तो हमारे नित्य के अनुभव की बात है। तब फिर जिसने अपने मन को पूर्ण रीति से वश में कर लिया है, ऐसे ब्रह्मज्ञ पुरुषों को किसी विषय के जानने की इच्छा होते ही उस विषय के प्रति अपने मन की सारी शक्तियों को लगा देने से यदि वह विषय उन्हें सहज ही मालूम हो जावे तो इसमें क्या आश्चर्य है? प्रश्न इतना ही है कि सारा जगत अनित्य है ऐसी जिनकी दृढ़ धारणा हो चुकी है, और जिन्होंने अपनी भक्ति, प्रेम और तपस्या के बल से सर्वशक्तिमान् जगत्कारण ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है, उनके मन में रेलगाड़ी चलाने, कारखाने खोलने या वैज्ञानिक आविष्कार करने का संकल्प या प्रवृत्ति ही उत्पन्न होती है या नहीं? आविष्कार करने की बात तो दूर रही, उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान रहता है या नहीं? जब उनके मन में इस प्रकार के संकल्प या प्रवृत्ति का उदय होना

ही असम्भव हो जाता है तब उनके द्वारा ये कार्य न हों यह ठीक ही है। श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास से हमने यह प्रत्यक्ष देख लिया कि सचमुच ही ब्रह्मज्ञ पुरुष के मन में इस प्रकार का संकल्प उदय नहीं होता! इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के चरित्र में की एक दो घटनाओं का उल्लेख करना ठीक होगा।

श्रीरामकृष्ण अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में काशीपुर के बगीचे में गले के रोग से बड़े अस्वस्थ थे। उनका रोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। उनकी बीमारी का हाल सुनकर श्रीयुत शशधर तर्कचूड़ामणि और कुछ दूसरे लोग एक दिन उन्हें देखने के लिये आये। बोलते २ पण्डित जी श्रीरामकृष्ण से कहने लगे—"महाराज, शास्त्रों में लिखा है कि आपके समान पुरुष इच्छा मात्र से शारीरिक रोग को आराम कर सकते हैं। मन को कुछ समय तक रोग की जगह में एकाग्र करके 'आराम हो जाय' ऐसी इच्छा करते ही रोग अच्छा हो जाता है। तब फिर आप यदि एक बार ऐसा करके देखें तो क्या यह ठीक नहीं होगा?" श्रीरामकृष्ण बोले—"आप पण्डित होकर यह क्या कह रहे हैं? जो मन एक बार सच्चिदानन्द को समर्पण कर दिया गया है, उसे वहां से हटा-कर क्या इस टूटे फूटे हाड़मांस की ठठरी पर लगाने की प्रवृत्ति हो सकती है?"

इसको सुनकर पण्डित जी तो निरुत्तर हो गये, परन्तु स्वामी विवेकानन्द आदि शिष्य मण्डली से शान्त रहते नहीं बना। पण्डित जी के चले जाने पर वे लोग उनके कथन के अनुसार करने के लिये श्रीरामकृष्ण से बहुत आग्रह करने लगे। वे बोले—"महाराज! आपको अपना रोग दूर करना ही चाहिये। कम से कम हमारी ओर देखकर तो आपको अपना रोग अच्छा करना ही चाहिये।"

श्रीरामकृष्ण—"मेरी क्या यह इच्छा है कि मैं रोग भोगता रहूं? मैं तो बहुत कहता हूं कि रोग आराम हो जाय, पर वैसा होता कहां है। आराम होना न होना ये सब माता के हाथ की बातें हैं!"

स्वामी विवेकानन्द—"तो आप माता से ही कहिये कि रोग को मिटा दे। माता आपकी बात निश्चय ही मानेगी।"

श्रीरामकृष्ण—" अरे ! तुम लोग तो बहुत कहते हो, पर यह बात मेरे मुँह से तो बाहर ही नहीं निकलती । इसको मैं क्या करूं ? "

स्वामी विवेकानन्द—" ऐसा न कहिये, महाराज ! आपको यह बात माता के सामने निकालनी ही चाहिये । "

श्रीरामकृष्ण—" अच्छा भाई ! देखूंगा हो सकेगा तो बात निकालूंगा । " कुछ घन्टों के बाद स्वामी जी (विवेकानन्द) पुनः श्रीरामकृष्ण के पास जाकर बोले—" महाराज ! क्या आपने माता के पास बात निकाली थी ? माता क्या बोली ? "

श्रीरामकृष्ण—" माता से मैंने कहा—' माता ! (गले की ओर उंगली दिखाकर) इसके कारण मुझे कुछ खाते नहीं बनता । इसलिये दो कौर खा सकूं ऐसा कोई उपाय तू कर । ' इस पर तुम सबकी ओर उंगली दिखाते हुए माता बोली—' क्यों भला ? इन सब के मुँह से क्या तू नहीं खाता ? ' यह सुनकर मुझे लज्जा आई, मेरी छाती धड़कने लगी और फिर मैं कुछ बोल नहीं सका । "

देहबुद्धि का यह कितना अद्भुत अभाव ! और अद्वैत ज्ञान की कितनी पराकाष्ठा है । उस समय छः महीने तक श्रीरामकृष्ण का रोज़ का आहार पाव डेढ़ पाव साबूदाना ही था और ऐसी अवस्था में—" क्यों भला ! क्या इन सब के मुँह से तू नहीं खाता ? " इस प्रकार जगदम्बा के कहते ही " इस क्षुद्र शरीर को, ' मैं ' कह दिया यह मैंने कितना बड़ा पाप किया, " यह सोचकर श्रीरामकृष्ण लज्जा से मुँह नीचा करके निरुत्तर हो गये और रोग को आराम करने की कल्पना तक मन में नहीं ला सके ।

वैसे ही और एक दिन की बात है । उस दिन श्रीरामकृष्ण बागबाज़ार में बलराम बसू के घर गये थे । दस बजे का समय होगा । श्रीरामकृष्ण वहां

दिन को ही आवेंगे यह पहिले ही निश्चित हो चुका था और इसी कारण नरेन्द्र आदि अनेक भक्त गण वहां एकत्रित होकर श्रीरामकृष्ण से और आपस में वार्तालाप कर रहे थे। बोलते २ माइक्रास्कोप (सूक्ष्मदर्शक यंत्र) की बात निकल पड़ी। आँख से बिल्कुल न दिखने वाली कई चीजें उसमें से दिख सकती हैं, शरीर पर का बारीक रोम भी छड़ी के समान मोटा दिखाई देता है, बिल्कुल छोटी चीज़ के भी भिन्न २ भाग दिखाई देते हैं—इत्यादि बातें सुनकर श्रीरामकृष्ण को एक छोटे बालक के समान कौतुक मालूम हुआ और उस यंत्र को देखने की इच्छा उन्होंने प्रकट की। अतः उसी दिन दोपहर को वह यंत्र कहीं से लाकर श्रीरामकृष्ण को दिखाने का उन भक्त लोगों ने निश्चय किया।

पता लगाते २ मालूम हुआ कि स्वामी प्रेमानन्द के भाई डॉक्टर बिपिन बिहारी घोष के यहां एक माइक्रास्कोप है। उन लोगों ने तुरन्त ही उसे वहां से मंगवा लिया और श्रीरामकृष्ण के पास उसे दिखाने ले गये। श्रीरामकृष्ण उठे और देखने के लिये आगे बढ़े, परन्तु बिना कुछ देखे ही पीछे हट गये! सभी को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका कारण पूछने पर श्रीरामकृष्ण बोले—"इस समय मन इतनी उच्च अवस्था में आरूढ़ हो गया है कि किसी भी उपाय से उसको वहां से उतार नहीं सकते!" हम लोगों ने उनके मन के उतरने की राह बहुत समय तक देखी पर फल कुछ नहीं हुआ। उनका मन उस दिन साधारण अवस्था में आया ही नहीं और तब तो उन्होंने उस यंत्र को बाद में देखा भी नहीं!

ऊपर लिखी हुई दोनों बातों पर से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि श्रीरामकृष्ण जैसे ब्रह्मानन्द में मग्न पुरुषों का अपने शरीर की ओर भी ध्यान नहीं रहता, तब और अन्य विषयों की ओर उनका ध्यान न जाने में और उन विषयों पर मन एकाग्र करके उनका ज्ञान प्राप्त न करने में क्या आश्चर्य है? अस्तु—

देहादि साधारण भाव को छोड़कर श्रीरामकृष्ण का मन जब उच्च उच्चतर भावभूमि पर आरूढ़ होता जाता था, तब उस २ अवस्था में प्राप्त होने वाले

सर्व असाधारण दर्शन समूह उन्हें प्राप्त होते थे और देहबुद्धि का सर्वथा त्याग करके जब उनका मन अद्वैत भाव में एक हो जाता था, तब तो उनकी इन्द्रियों का सर्व व्यापार बिल्कुल बन्द हो जाता था—हृदय का स्पदंन तक बन्द हो जाता था और कुछ समय तक उनका भौतिक शरीर मृतवत् पड़ा रहता था। उस समय यदि उनकी आँख की पुतली को स्पर्श किया जाता था तो भी पलकें नहीं हिलती थीं! इस प्रकार की अत्यन्त उच्च अवस्था में उन्हें पृथ्वी पर की सभी चीज़ों और सभी विषयों का पूर्ण विस्मरण हो जाता था। सो भी यहां तक कि इस अवस्था से निकलकर साधारण अवस्था में मन के आ जाने पर भी कुछ समय तक वे नित्य परिचय की वस्तुओं और व्यक्तियों तक को पहिचान नहीं सकते थे; और मै कोई नई सृष्टि देख रहा हूं ऐसा भास उन्हें होकर, क्या मैं इस वस्तु या व्यक्ति को इसके पहिले कभी देखा हूं ऐसा वे स्मरण करने लगते थे। फिर भी मैं गलती तो नहीं कर रहा हूं यह निश्चय करने के लिये पास के किसी व्यक्ति की ओर उंगली दिखाकर "नरेन्द्र?" (यह नरेंद्र ही है कि नहीं?) "राखाल?" और किसी दूसरी वस्तु की ओर उंगली दिखाकर—"लोटा?" "धोती?"—ऐसा पूछा करते थे और पास में बैठे हुए लोग—"हां महाराज! नरेन्द्र", "हां महाराज! लोटा" इत्यादि उत्तर देते थे; तब मानो पहिचानने लगे ऐसा जानकर वे दूसरी बातें बोलना प्रारम्भ करते थे!!

उपरोक्त विवेचन से यह विदित हो गया होगा कि इस संसार की भिन्न २ वस्तुओं और व्यक्तियों की ओर श्रीरामकृष्ण दो दृष्टियों से देखते थे। एक तो, विराट अहंकार में उनका मन एकरस हो जाने पर उस उच्च अवस्था से, और दूसरी साधारण भावभूमि से। इसीलिये किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में उनका एक देशीय मत कभी नहीं होता था और इसी कारण वे दूसरों के मन के सभी भावों को जान सकते थे। हम लोग तो मनुष्य को मनुष्य, पशु को पशु, पेड़ को पेड़ इसी दृष्टि से देखते हैं; परन्तु श्रीरामकृष्ण को मनुष्य, पशु, वृक्ष क्रमशः मनुष्य, पशु, वृक्ष तो दिखते ही थे पर इसके सिवाय उन्हें यह भी दिखाई देता था कि इन सब में वह जगत्कारण सच्चिदानन्द भरा हुआ है। किसी में उसका प्रकाश अधिक और किसी में कम—इतना ही अन्तर है। वे कहते थे—"ऐसा देखता हूं कि मनुष्य, पशु, वृक्ष, प्राणी ये सब

भिन्न २ आवरण हैं। तकियों के जैसे गिलाफ़ होते हैं—कोई छींट का, कोई खादी का, और कोई दूसरे कपड़े का, कोई चौकोन, कोई गोल—इस प्रकार भिन्न २ प्रकार के कपड़े के और आकार के होते हैं; पर इन सभी में एक ही पदार्थ-कपास-भरा रहता है। उसी तरह मनुष्य, पशु आदि सभी में वही एक ही अखण्ड सच्चिदानन्द भरा है। सचमुच मुझे ऐसा दिखता है कि माता इन भिन्न २ प्रकार की ओढ़नियों को ओढ़कर भीतर से झाँककर देख रही है। एक समय ऐसी अवस्था हो गई थी कि जब सदा ऐसा ही दिखाई देता था। मेरी ऐसी अवस्था देखकर, उसे ठीक २ न समझने के कारण, सब लोग मुझे सिखाने के लिये, शान्त करने के लिये आये। रामलाल की माँ ने मुझे कितना समझाया और अन्त में वह खुद ही रोने लगी। उन सब की ओर मैंने देखा तो ऐसा दिखाई दिया कि (काली मन्दिर की ओर इशारा करके) यह माता ही भाँति भाँति के वेष धारण करके मुझसे ये सब बातें कह रही हैं। उसके ये सब ढंग देखकर हँसते २ मेरे पेट में दर्द होने लगा और मैं कहने लगा—" वाह ! माता ! कैसी सजकर आई है ! " किसी दूसरे दिन की बात है, मैं मन्दिर में आसन पर बैठकर माता का ध्यान करने लगा, पर किसी भी उपाय से माता की मूर्ति ध्यान में आती ही नहीं थी। ऐसा क्यों हो रहा है सोचकर देखता हूं तो कालीघाट पर एक रमणी नाम की वेश्या नित्य स्नान करने आती थी उसी के समान सजकर माता सिंहासन के पास ही खड़ी होकर झाँककर देख रही है। यह देखकर मुझे हँसी आई और मैं बोला—' वाह ! वाह ! माता ! आज तुझे रमणी बनने की इच्छा हो गई ? तो भी ठीक है, अब इसी रूप से आज अपनी पूजा ग्रहण कर ! ' रमणी के समान साज सजाकर माता ने दिखा दिया कि वेश्या भी मैं ही हूं, मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। और एक दिन मैं मच्छी बाज़ार से गाड़ी में बैठकर जा रहा था, वहां देखा कि बड़ी सजधज के साथ, भाँग निकालकर, सुन्दर साड़ी पहिनकर बरामदे में खड़ी २ हुक्का पीते हुए एक वेश्या लोगों का मन लुभा रही है। इसे देखकर मैं चकित होकर बोला—' वाह ! वाह ! माता ! आज तुझे यह रूप धारण करने की इच्छा हुई ! ' और उसे प्रणाम किया। " उच्चभावभूमि पर आरूढ़ होकर जगत के वस्तु मात्र की ओर इस दृष्टि से

देखना हम बिल्कुल भूल गये हैं; इसी कारण हमें श्रीरामकृष्ण के इस अद्भुत उपलब्धि का रहस्य कैसे मालूम हो ? अस्तु—

यह तो हुई उच्चभावभूमि पर से देखने की प्रणाली। अब जिस समय श्रीरामकृष्ण साधारण भावभूमि में रहते थे तब उनके मन में स्वार्थसुख या भोगसुख की लेश मात्र इच्छा न रहने के कारण उनकी शुद्ध बुद्धि और शुद्ध दृष्टि में हमारी अपेक्षा कितनी अधिक बातें समझ में आ जाती थीं और वे सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहन से गहन विषय को भी सहज ही में समझ सकते थे। अद्वैत भाव का पूर्ण रूप से अभ्यास रहने के कारण उन्हें जगत में ईश्वर के स्वरूप के सिवाय और कुछ नहीं दिखता था, और उनका यह अद्वैत ज्ञान इतना गम्भीर था कि बिल्कुल थोड़े ही उद्दीपन से भी उन्हें एकदम समाधि लग जाती थी ! इस प्रकार की घटनाएँ नित्य हुआ करती थीं।

एक दिन वे अपने कमरे के बरामदे में बैठे थे कि एक पतंग उड़ता हुआ आया। उसके शरीर में एक बड़ा सा कांटा घुस गया था जिसे वह निकालने का बहुत प्रयत्न करता था। उसकी उस दशा को देखकर श्रीरामकृष्ण का शरीर थर २ कांपने लगा, और वे "हे राम ! यह तेरी कैसी शोचनीय दशा हो गई है ?" कहते २ समाधिमग्न हो गये।

एक दिन गाड़ी में बैठकर कलकत्ते से दक्षिणेश्वर आते समय किसी बड़ी सड़क पर एक पान की दूकान दिखाई दी। दूसरी एक बड़ी दूकान की सीढ़ी के पास नाली के किनारे एक कमानी के नीचे एक ही मनुष्य के किसी तरह बैठ सकने लायक जगह थी। वहीं नाली पर एक चौरंग (तख्त) रखकर उस कमानी के नीचे की तंग जगह में उस पानवाले ने अपनी दूकान सजाई थी। उस बेचारे को वहां ठीक २ उठते बैठते भी नहीं बनता था। उसके इस प्रकार के संसार को देखकर श्रीरामकृष्ण की आँखें डबडबा गईं और "माता ! माता ! तेरी माया का प्रभाव बड़ा विचित्र है" ऐसा कहते २ वे समाधिमग्न हो गये।

और एक दिन कलकत्ते से दक्षिणेश्वर लौटते समय उनकी बग्घी एक शराब की दूकान के पास से गई। वहां ग्राहकों की बहुत भीड़ थी और सुरा-

पान के आनन्द में मस्त होकर कुछ लोग ज़ोर २ से बोलते थे, कोई गाते थे, कोई नाचते थे—इस तरह वहां बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। उन लोगों के इस आनन्द को देखकर श्रीरामकृष्ण को ब्रह्मानन्द का उद्दीपन हो आया और वे एकाएक गाड़ी के भीतर ही खड़े होकर उन लोगों की ओर देखते हुए "वाह! वाह! बहुत अच्छा जलसा है" कहते २ समाधिमग्न हो गये!

कई बार तो "कारण" (मद्य) शब्द का उच्चारण होते ही उन्हें जगत्कारण ईश्वर का उद्दीपन होकर उसी नशे में उन्हें समाधिमग्न होते हुए हम लोगों ने देखा है! स्त्री पुरुषों के जिस अवयव का केवल नाम लेना ही असभ्य और अश्लील माना जाता है, उनका उच्चारण करते २ भी वे कई बार समाधि-मग्न हो जाते थे और अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर वे कहते थे—"माता! पचास वर्ण तेरे ही स्वरूप हैं न? तब जिन वर्णों को जोड़ने से वेद-वेदान्त की रचना हुई है वे भी सब अश्लील ही हुए! तेरे वेदवेदान्त का 'क' 'ख' भिन्न और अश्लील भाषा का 'क' 'ख' उससे भिन्न तो नहीं है न? वेदवेदान्त भी तू ही है और गाली गलौज भी तू ही है।" और ऐसा कहते हुए वे पुनः समाधिमग्न हो जाते थे। संसार के सभी भले बुरे पदार्थ उनकी पवित्र दृष्टि में केवल जगन्माता के स्वरूप ही दिखाई देते थे। यह मन की कितनी उच्च पवित्रता है!

वैसे ही श्यामपुकूर के बगीचे में रहते समय एक दिन किसी ने श्रीराम-कृष्ण से पूछा कि साकार और निराकार ध्यान के उपयोगी कौन कौन से आसन हैं? तब वे उसे समझाने लगे। पद्मासन लगाकर बाईं हथेली पर दाहिनी हथेली का पृष्ठभाग रखकर उन दोनों हाथों को अपने वक्षःस्थल पर धारण करके आँखें मूंदकर वे बोले—"सब तरह के साकार ध्यान के लिये यह आसन उपयुक्त है।" इसके बाद उसी आसन पर बैठकर बांयें घुटने पर बांया और दाहिने घुटने पर दाहिना पंजा चित्त रखकर अंगूठा और तर्जनी के सिरे मिलाकर बाकी अंगुलियाँ सीधी रखकर दृष्टि भ्रूमध्य भाग में स्थिर करके वे बोले—"निराकार ध्यान के लिये यही आसन ठीक है।" परन्तु ऐसा कहते २ उन्हें समाधि लग गई। समाधि उतरने बाद वे बोले—"अब और कुछ नहीं

बताता क्योंकि इस तरह इस आसन पर बैठते क्षण ही उद्दीपन होता है और मन तन्मय होकर समाधि में लीन हो जाता है।"

सदैव ईश्वर का चिन्तन करने तथा भाव और समाधि में मग्न रहने के कारण वे अद्वैत भाव की पराकाष्ठा में पहुँच गये थे और वे यथार्थ में दिव्य-भावारूढ़ हो गये थे। ईश्वर से पृथक् अपना अस्तित्व भूल जाने और 'अहं' का लेश मात्र भी उनके मन में न रहने के कारण वे ऐसी उच्च अवस्था में पहुँच गये थे कि जो उनकी इच्छा होती थी वही ईश्वर की इच्छा रहती थी। उनके सब व्यवहार में, बोलचाल में मानुषी दुर्बलता या असम्पूर्णता का कुछ भी अंश शेष नहीं था। उनका शरीर चैतन्यमय हो गया था और अमानुषी ईश्वरी शक्ति के प्रकट होने के लिये वे एक प्रबल यंत्र बन गये थे। उनके अमानुषी दिव्य भाव को प्रकट करने वाले उदाहरण उनके जीवन में प्रतिदिन पाये जाते थे और उनकी अमानुषी शक्ति का परिचय हर एक को हो जाता था।

अवतारी महापुरुषों में, दूसरों को स्पर्श करके या उनकी ओर देखकर या केवल इच्छा मात्र से उनके मन की मलीनता को दूर करके उनकी वृत्ति को ईश्वराभिमुख बना देने की शक्ति रहा करती है। यह शक्ति श्रीरामकृष्ण में पूर्ण रूप से निवास करती थी। कई बार ऐसा देखा गया है कि कोई उनके विरुद्ध मत का अवलम्बन करके उनके साथ बहुत वाद विवाद करता हो, मानो, उसने निश्चय कर लिया हो कि 'श्रीरामकृष्ण का कहना मानना ही नहीं हैं,' ऐसे समय उससे बोलते २ बड़ी चतुराई से उसके शरीर को स्पर्श कर देते थे। ऐसा करते ही परिणाम यह होता था कि उसी समय से उसकी विचारधारा की गति बदल जाती थी और वह मनुष्य श्रीरामकृष्ण के सिद्धान्त को पूर्ण रीति से मान्य कर लेता था। श्रीरामकृष्ण स्वयं ही कभी २ कहते थे—"लोगों से बोलते २ बीच में ही मैं किसी को स्पर्श क्यों कर देता हूं इसका कारण जानते हो? जिस अविद्या शक्ति का आवरण उसके मन पर पड़ जाता है, उस शक्ति का ज़ोर कम होकर उसको यथार्थ सत्य समझाने के लिये ही ऐसा करता हूं!" अपने भक्तों में से बहुतों को वे ध्यानस्थ होने के लिये कहकर उनके वक्षःस्थल को, जिव्हा को स्पर्श कर देते थे। उस शक्ति-

शाली स्पर्श के प्रभाव से उनके मन का बाह्य-विषय-चिन्तन नष्ट होकर उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती थी और भिन्न २ व्यक्तियों को भिन्न २ प्रकार के दर्शन और अनुभव प्राप्त होते थे ! नरेन्द्र, छोटे नरेन्द्र, तारक, तेजचन्द्र आदि प्रायः सभी भक्तों के जीवन में उनके इस दिव्यशक्तिपूर्ण स्पर्श ने क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी ! नरेन्द्रनाथ के जीवन में इससे कितनी उथल पुथल मच गई उसका वर्णन आगे करेंगे। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि "मन के बाहर रहने वाली शक्तियों को किसी उपाय से वश में करके उनके बल पर कोई चमत्कार कर दिखाना कोई बड़ी बात नहीं है, पर यह दक्षिणेश्वर के मन्दिर का अशिक्षित पुजारी, जैसे मिट्टी के लोंदे को चाहे जैसा आकार दे सकते हैं उसी तरह, लोगों के मन को चाहे जैसा बना देता था, उनके मन में चाहे जैसा परिवर्तन कर सकता था, स्पर्श द्वारा या केवल इच्छा मात्र से उनके मन के विचार के प्रवाह को बदल डालता था—इससे अधिक आश्चर्यमय चमत्कार मुझे और कहीं नहीं दिखाई दिया !"

उनकी दिव्य शक्ति के बहुत से उदाहरण इसके पहिले लिखे जा चुके हैं। काशीपुर के बगीचे में अपने अन्तिम दिनों में गले के रोग से अत्यन्त पीड़ित रहते हुए, श्रीरामकृष्ण एक दिन हमसे बोले—"माता मुझसे ऐसा कह रही है कि (अपनी ओर उंगली दिखाकर) इस शरीर में अब एक ऐसी शक्ति प्रकट हो गई है कि अब किसी को स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी से कहूंगा कि 'तू उसे स्पर्श कर' और उसका स्पर्श करना ही बस होगा और केवल उसीसे उसको चैतन्य प्राप्ति हो जावेगी। यदि इस समय माता ने यह रोग मिटा दिया तो लोगों की यहां इतनी भीड़ होगी कि रोकते २ तुम्हारे नाकों दम हो जावेगा, और मुझे भी इतना श्रम उठाना पड़ेगा कि औषधि लेकर शरीर को स्वस्थ रखना पड़ेगा।" अस्तु—

विशेष विशेष पर्व के समय श्रीरामकृष्ण के शरीर और मन में विशेष विशेष प्रकार के देवभाव उत्पन्न होते थे। वैष्णवों के पर्व के दिन वैष्णव भाव, शाक्तों के पर्व के दिन शक्ति भाव उनमें विशेष मात्रा में दिखाई देता था। उदाहरणार्थ—दुर्गा पूजा या काली पूजा के दिन वे श्रीजगदम्बा के भाव में

इतने तन्मय हो जाते थे कि उनके शरीर का हिलना डुलना भी श्री जगदम्बा की वराभयमूर्ति के समान हो जाता था। जन्माष्टमी और अन्य वैष्णव पर्व के दिन वे श्रीकृष्ण और राधा के भाव में तन्मय हो जाते थे जिससे उनके अंगों में कम्प, पुलक, आदि अष्ट सात्त्विक भावों के लक्षण दिखाई देते थे और ये भिन्न २ भावावेश उनमें इतनी स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होते थे कि ऐसा मालूम पड़ता था कि इन भावों के उत्पन्न होने में उन्हें कुछ भी श्रम नहीं होता। इतना ही नहीं, वरन् यह भी देखने में आया कि किसी पर्व के दिन ईश्वरी कथा प्रसंग में वे अत्यन्त तन्मय हो जाने के कारण आज अमुक पर्व है यह बात भूल गये हों, और इतने ही में बाहिरी कथा वार्ता बन्द हो जाय तब उस दिन के पर्व के उपयुक्त भाव उनमें उत्पन्न हो जाते थे, मानो कोई ज़बरदस्ती उनके मन के भावप्रवाह को बदल रहा हो। कलकत्ते में श्यामपुकूर में रहते समय डॉ. सरकार आदि लोग दुर्गा पूजा के दिन बोल रहे थे कि श्रीरामकृष्ण को अकस्मात् भावावेश उत्पन्न हो गया। उस समय की उनकी तेजमय और हास्ययुक्त मुखाकृति को देखकर कौन कहता कि उन्हें रोग हुआ है ?

जिस समय जो भाव उनके मन में प्रबल रहता उसी में वे इतने तन्मय होकर रहते थे कि उनके मन में दूसरा कोई भी विचार नहीं आता था। उनके स्वभाव की यह विशेषता उनके अब तक के चरित्र से पाठकों के ध्यान में आ ही गई होगी। भावावेश में यदि वे चलते थे, तो उनका ध्यान इधर उधर या आसपास बिल्कुल नहीं रहता था और वे किसी मतवाले मनुष्य के समान क़दम रखा करते थे। लगातार १२ वर्ष की कठोर तपस्या के कारण उनके मन को एकाग्रता का इतना अभ्यास हो गया था कि हाथ में लिये हुए काम के सिवाय, अथवा मन में उस समय जो विचार रहता था उसके सिवाय, दूसरा काम या विचार करना उनके लिये असम्भव हो जाता था। उदाहरणार्थ दक्षिणेश्वर में अपने कमरे से वे श्री जगदम्बा के दर्शन के लिये मन्दिर की ओर जा रहे हैं। उनके कमरे से श्री जगदम्बा के मन्दिर में जाते समय रास्ते में श्री राधा गोविन्द जी का मन्दिर पड़ता है। तब मामूली तौर से यही ठीक दिखता है कि जाते २ श्री राधा गोविन्द जी का दर्शन करके फिर

वे श्री जगदम्बा के मन्दिर को जाते। पर उनसे ऐसा कभी नहीं बनता था। अपने कमरे से निकले कि वे सीधे जल्दी २ प्रथम श्री जगदम्बा के मन्दिर में पहुँचते और माता को प्रणाम करके लौटते समय श्री राधा गोविन्द जी के दर्शन के लिये जाते थे। पहिले २ हमें ऐसा मालूम पड़ता था कि इन्हें श्री जगदम्बा के प्रति विशेष भक्ति है इसी कारण ये ऐसा करते हैं; पर एक दिन श्रीरामकृष्ण स्वयं बोले—"ऐसा क्यों होता होगा भला? माता के दर्शन के लिये जाने का मन हुआ कि सीधे माता के ही मन्दिर की ओर जाना पड़ता है। यदि चाहें कि राधा गोविन्द जी का दर्शन करते हुए जावें या इधर उधर होते हुए जावें तो वैसा करते नहीं बनता था। पैर भी इधर उधर नहीं चलते थे। माता का दर्शन कर लेने के बाद चाहे जहां जाते बनता है। ऐसा क्यों होना चाहिये?" इसका कारण वे स्वयं ही कई बार बताते थे। वे कहते थे, "ऐसा है कि अमुक एक कार्य करना है ऐसा मन में आ जाने पर, उसी समय वैसा कर डालना चाहिये। उसमें थोड़ा भी विलम्ब असह्य हो जाता है। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त हो जाने पर तो वहां कुछ 'मैं', 'तू', बोलना चालना आदि शेष नहीं रह जाता। वहां से २-३ सीढ़ियां उतरने के बाद भी मन की यह स्थिति रहती है कि उस समय भी कई वस्तुओं या व्यक्तियों से व्यवहार करते नहीं बनता। मान लो, उस समय मैं भोजन करने बैठा और थाली में पचास तरह की तरकारियां परोसी गई है, तो भी हाथ उनकी ओर नहीं जाता। जो कुछ खाना हो उन सब को एक में मिलाकर एक ही जगह से कौर उठा २ कर खाना पड़ता है।"

भावावेश में शरीरज्ञान का पूर्ण लोप हो जाने के कारण उनके हाथ, पैर, सिर आदि अंग टेढ़े मेढ़े हो जाते थे। कभी २ तो उनका सारा शरीर हिलने लगता था और मालूम होता था कि वे अब गिर रहे हैं। इस कारण ऐसे समय पास मे रहने वाले भक्त गण उनके टेढे मेढ़े अंग को धीरे २ ठीक कर देते थे और वे गिरने न पावें इस उद्देश से उन्हें ठीक तरह से सम्हाल लिया करते थे; और उनकी समाधि को उतारने के लिये जिस देवता या भाव के चिन्तन के कारण उन्हें समाधि लगी होती थी, उसी देवता का नाम—"काली २" "कृष्ण २" "ॐ २" उनके कान में लगातार कुछ समय तक उच्चारण करते थे। ऐसा करने से उनकी समाधि उतरती थी! जिस भाव के चिन्तन के कारण वे तन्मय

होकर समाधिमग्न हुआ करते थे, उसके सिवाय दूसरे भावों का नाम उनके कान में उच्चारण करने से उन्हें भयानक पीड़ा होती थी। श्रीरामकृष्ण कहते थे—" एक ऐसी अवस्था हुआ करती है कि उस समय किसी का भी स्पर्श सहन नहीं होता। यदि भूल से भी किसी का स्पर्श हो जावे तो भी वेदना होती है। और ऐसी भी एक अवस्था होती है कि उस समय केवल (बाबूराम की ओर उंगली दिखाकर) इसी का स्पर्श सहन होता है और इसी के हाथ का भोजन ग्रहण किया जा सकता है। "

श्रीरामकृष्ण श्री जगदम्बा के दर्शन के लिये प्रतिदिन जाया करते थे और वे जब २ जाते थे तब २ उन्हें भावावेश उत्पन्न हो जाता था और कभी २ तो उन्हें गहरी समाधि भी लग जाती थी। तब तो समाधि उतरकर बाह्य दशा प्राप्त होते तक वहीं पर उन्हें कोई पकड़कर खड़ा रहता था। बहुत समय तक उनके कानों में नामोच्चारण करने पर धीरे २ उनकी समाधि उतरती थी और वे अपने कमरे की ओर जाते थे। ऐसे समय में उनको हाथ पकड़कर चलना आवश्यक हो जाता था और चलते समय छोटे बालक के समान उनकी ख़बरदारी रखनी पड़ती थी। नहीं तो भावावस्था के नशे में उनके गिरने का भय रहता था। इसीलिये उनको पकड़कर चलने वाले मनुष्य को—" यहां सीढ़ी है ज़रा नीचे पैर रखिये ", " यहां सीढ़ी चढ़ना है, ज़रा पैर उठाकर रखिये " इस प्रकार उन्हें सावधान करते हुए उनके कमरे तक ले जाना पड़ता था।

एक दिन कलकत्ता से लौटने पर, श्रीरामकृष्ण सीधे काली मन्दिर में चले गये और देवी का दर्शन करके बाहर जगमोहन (सभामण्डप) में खड़े होकर एक स्तुति का पद्य कहते २ समाधिमग्न हो गये। पास में बहुत से भक्त लोग भी थे। श्रीरामकृष्ण को खड़े २ समाधिमग्न होते देखकर, शायद वे गिर न पड़े इस डर से छोटे नरेंद्र उनको सम्हाले रखने के लिये आगे बढ़े, परन्तु उनके हाथ का स्पर्श होते ही श्रीरामकृष्ण एकदम चिल्ला उठे ! ऐसे समय में मेरा स्पर्श श्रीरामकृष्ण को पसन्द नहीं है यह देखकर बेचारा नरेन्द्र उदास होकर दूर हट गया। वहीं कुछ दूर पर श्रीरामकृष्ण का भतीजा रामलाल था ! श्रीरामकृष्ण का चिल्लाना सुनकर वह दौड़ता हुआ वहां पहुँचा और श्रीरामकृष्ण को पकड़कर खड़ा

रहा। बहुत समय तक श्रीरामकृष्ण के कान में नामोच्चारण करने पर उनकी समाधि उतरी, तो भी उनके पैर इतने लड़खड़ाते थे कि उनसे ठीक खड़े रहते नहीं बनता था।

कुछ समय के बाद जगमोहन की सीढ़ियों पर से वे आंगन में उतरने लगे और उतरते २ छोटे बालक के समान कहने लगे, "मां! मुझे ज़रा अच्छी तरह तो पकड़ो, नहीं तो मैं गिर पड़ूंगा!" और सचमुच उनकी ओर देखने से ऐसा मालूम होने लगा कि श्रीरामकृष्ण एक छोटे बच्चे हैं और वे अपनी माता के मुँह की ओर देखते हुए ही इस तरह बोल रहे हैं और खुद माता के ही हाथ पकड़े रहने के कारण धीरज धरकर उन सीढ़ियों पर से उतर रहे हैं। छोटी २ बातों में भी यह कैसी विचित्र निर्भरता थी। वे अपने कमरे में पहुँच गये तो भी उनका भावावेश ज्यों का त्यों बना हुआ था। कुछ समय तक ज़रा कम पड़ जाता था फिर कुछ समय तक बढ़ जाता था; यही क्रम लगातार जारी था। थोड़ी देर के बाद उनकी समाधि पूर्ण रीति से उतर गई। तब कहीं पता लगा कि छोटा नरेन्द्र उन्हें पकड़ने लगा उस समय उसके पकड़ने से वे क्यों चिल्लाये। नरेन्द्र के सिर में बाईं ओर एक फोड़ा हुआ था और डॉक्टर ने उसी वक्त उसकी चीर फाड़ की थी। हमने सुना तो ज़रूर था कि "क्षत शरीर से देवमूर्ति को स्पर्श नहीं करना चाहिये।"

परन्तु हमें यह कल्पना भी नहीं थी कि इस कहावत की सत्यता इस विचित्र रीति से हमारी आँखों के सामने प्रमाणित होगी! देवी भाव में तन्मयता प्राप्त होकर बाह्य ज्ञान के पूर्ण लोप होने पर भी कौन जाने किस प्रकार अंतर्ज्ञान से श्रीरामकृष्ण को यह बात मालूम हो गई। पर यह निःसन्देह सत्य है कि नरेन्द्र के स्पर्श करते ही उन्हें पीड़ा हुई और वे चिल्लाये। सभी जानते थे कि वे छोटे नरेन्द्र को कितने शुद्ध स्वभाव का समझते थे और उसके शरीर में घाव रहने पर भी साधारण अवस्था में और दूसरों के समान उसे भी अपने को छूने देते थे, और उसके साथ एक जगह उठते बैठते भी थे। अतः वह भी कैसे जाने कि भावावस्था में श्रीरामकृष्ण को अपने स्पर्श करने से कष्ट होगा। अस्तु— तब से घाव आराम होते तक उसने पुनः श्रीरामकृष्ण के शरीर को स्पर्श नहीं

किया। उपरोक्त घटना से स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण में दिव्य भावों का कितना अद्भुत विकास हो चुका था।

केवल स्पर्श से या इच्छा से दूसरे के विचारों को बदल देने का जैसा अद्भुत सामर्थ्य उनमें था, वैसे ही दूसरे के रोग को भी अपने शरीर में खींच लेने का विचित्र सामर्थ्य भी उनमें था। तथापि वे अपनी शक्ति का बहुत कम उपयोग करते थे। मथुरबाबू की पत्नी (जगदम्बा दासी) का संग्रहणी रोग उन्होंने अपने ऊपर खींच लिया यह हम पीछे लिख ही चुके हैं। और एक समय एक कोढ़ी मनुष्य उनके पास आया और "यदि आप एक बार मेरे शरीर पर केवल हाथ फिरा देंगे तो मेरा रोग दूर हो जायेगा" कहते हुए हाथ फेरने के लिये अत्यन्त करुणापूर्ण प्रार्थना करने लगा। श्रीरामकृष्ण को उस मनुष्य पर बड़ी दया आ गई और वे बोले, "भाई! मुझे तो कुछ मालूम नहीं है, पर तू कहता ही है इसलिये फेर देता हूं तेरे शरीर पर हाथ! माता की इच्छा होगी तो रोग आराम हो जावेगा।" ऐसा कहकर उन्होंने उसके शरीर पर से हाथ फिरा दिया। उस दिन सारे दिन भर श्रीरामकृष्ण के हाथ में ऐसी पीड़ा होती रही कि वे उसे सह नहीं सकते थे! और अन्त में वे कहने लगे, "माता! पुनः ऐसा काम मैं कभी नहीं करूंगा, मुझे क्षमा कर।" श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "उसका रोग तो अच्छा हो गया पर उसका भोग मुझे भुगतना पड़ा।"

श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी ढाका में रहते समय एक दिन अपने घर का द्वार बन्द करके ध्यान कर रहे थे। कुछ समय में उन्हें ऐसा भास हुआ कि श्रीरामकृष्ण मेरे सामने बैठे हुए हैं। शायद यह अपने मस्तिष्क का भ्रम हो यह सोचकर अपने सामने की मूर्ति की ओर बढ़कर उन्होंने उस मूर्ति को स्पर्श किया और हाथ पैर को टटोलकर भी देखा। तब उन्हें यह निश्चय हो गया कि ये प्रत्यक्ष श्रीरामकृष्ण देव ही हैं।

कलकत्ता आने पर एक दिन वे दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये आये थे। तब उन्होंने उक्त घटना की सभी के सामने श्रीरामकृष्ण के पास चर्चा की। वे बोले, "मैंने देश, विदेश, पहाड़, पर्वत सभी जगह खूब घूम २ कर अनेक साधु महात्माओं को देखा, पर (श्रीरामकृष्ण की ओर इशारा करके) इनके समान एक भी पुरुष मेरे देखने में नहीं आया। यहां जिन भावों का पूर्ण प्रकाश दिखाई देता है उसमें से कहीं पाई, कहीं पैसा, तो कहीं आना या अधिक से अधिक दो आने प्रकाश पाया। चार आने भी कहीं नहीं दिखाई पड़ा।" हमारी ओर देखकर कुछ हँसते २ श्रीरामकृष्ण कहने लगे—"अरे! यह क्या कह रहा है?" विजयकृष्ण बोले, "मैंने उस दिन ढाका में जो दृश्य देखा उसे आप अस्वीकार कर ही नहीं सकते और आप यदि ऐसा करें भी तो मैं आपकी एक नहीं मानूंगा। आप दिखने को बड़े भोले-भाले दिखते हैं, इसी कारण हम बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं; और आप हमें बिल्कुल पता नहीं लगने देते। आपके दर्शन करने में भी कोई बड़ा कष्ट उठाना नहीं पड़ता। दक्षिणेश्वर आने को सिर्फ़ घन्टे डेढ़ घन्टे का रास्ता चलना पड़ता है। सवारियों की भी कमी नहीं रहती। नौका है, बग्घी है, गाड़ी है—जब चाहे तब आसानी से आ सकते है। आप इस तरह बिल्कुल हमारे घर के पास आकर बैठे हैं, इसीलिये हम लोगों ने आपको नहीं पहिचाना! और यदि आप किसी पहाड़ पर, किसी दुर्गम गुफा में जाकर बैठे होते और आपके दर्शन के लिये हमें भूख उपवास का दुःख सहते कई दिनों तक जंगल २ भटकना पड़ता, तब तो हम आपका उचित मूल्य समझते! अब तो ऐसा लगता है कि जब हमारे घर के पास इतना है तो दूर जंगल पहाड़ और कंदरा में तो इससे और कितना ही अधिक मिलेगा! ऐसा सोचकर आपको छोड़कर बस व्यर्थ ही इधर उधर दौड़ धूप करते हुए मरते रहते हैं।"

इस प्रकार यथार्थ गुरु पदवी पर आरूढ़ हो जाने पर भी श्रीरामकृष्ण के मन में अपनी असाधारण शक्ति के कारण किंचित् भी अहंकार का उदय नहीं हुआ अथवा यों कहना अधिक उचित होगा कि उनमें अहंकार लेश मात्र भी न रहने के कारण ही उन्हें श्री जगदम्बा ने गुरु पदवी पर आरूढ़ किया था। अद्वैतभाव की अत्युच्च अवस्था का सदा प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी

उन्होंने परमेश्वर से अपनी माता और बालक का अत्यन्त प्रेममय सम्बन्ध सदा क़ायम रखा। " मैं अनजान बालक हूं, मेरी माता सब कुछ जानती है—वह सर्व शक्तिशाली है। मुझको सदा उसकी प्रार्थना करते रहना चाहिये। सदा उसी से चिपके रहना चाहिये—उसे जो करना होगा सो करेगी। " इस प्रकार की उनकी विलक्षण निर्भरता थी। वे नित्य प्रातः सायं परमेश्वर का नामस्मरण करते थे। वे अपने इस नित्य नियम में कभी नहीं चूकते थे। उनका सदा यही उपदेश रहता था कि—" कलियुग में नामस्मरण के समान दूसरा सरल साधन नहीं है ", " नामस्मरण से मनुष्य के मन और शरीर दोनों शुद्ध हो जाते हैं। " उनके कमरे में श्री चैतन्य, श्री बुद्धदेव, ईसामसीह आदि की तसवीरें रहती थीं। सबेरे उठकर भावावेश में वे प्रत्येक तसवीर के सामने जाते और अत्यन्त तन्मयता से नाचते २ ताली बजाते २ अपने गंधर्व के समान वे मधुर स्वर से नामस्मरण करते। संध्या समय भी यही होता। उस समय वे चाहे कलकत्ते में किसी भक्त के घर हों या दक्षिणेश्वर में अपने कमरे में हों—सायंकाल होते ही वे एकदम सब बातें बन्द करके नामस्मरण करने लगते! सच्ची व्याकुलता के साथ अन्तःकरण से ईश्वर की प्रार्थना किस तरह करनी चाहिये यही बात मानो उस समय वे लोगों को सिखाते थे।

उनके इस नामस्मरण और प्रार्थना का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं था। जिस समय जो भाव उत्कट हो उसी भाव से वे प्रार्थना करते थे और वह किसी भी देवता की हो, उनके बिल्कुल अन्तःकरण से होते रहने के कारण उनके शब्दों का प्रभाव सुनने वालों के मन पर स्थायी रूप से पड़ता था।

उदाहरणार्थ नीचे लिखी घटना को देखिये:—

× × × ×

प्रातःकाल हो गया है। अभी तक भक्त मंडली पहुँची नहीं है। कृष्ण मुँह धोकर अपने कमरे के पश्चिमद्वार के समीप खड़े होकर मधुर स्वर से

ईश्वर का नामस्मरण कर रहे हैं। पास ही 'एम्*' खड़े हैं। इतने में ही "गोपाल की माँ" और एक दो अन्य स्त्रियाँ भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये आकर एक ओर खड़ी हो गई।

श्रीरामचन्द्र का नामस्मरण करके, श्रीरामकृष्ण श्रीकृष्ण का नामस्मरण कर रहे हैं--"कृष्ण, कृष्ण; गोपीकृष्ण; गोपी, गोपी! राखाल-जीवन कृष्ण! नन्दनन्दन कृष्ण! गोविन्द, गोविन्द!"

कुछ समय में श्रीगौरांग का नामस्मरण कर रहे हैं--"श्रीकृष्ण चैतन्य-प्रभु नित्यानन्द! हरे कृष्ण, हरे राम, राधे गोविन्द!"

फिर थोड़ी देर में कह रहे हैं-- "अलख निरञ्जन!", "निरञ्जन!" कहते २ वे रो रहे हैं! उनके रोने की आवाज़ सुनकर पास में खड़े हुए लोगों की आँखें भी डबडबा आई हैं। श्रीरामकृष्ण आँसू बहाते हुए गद्गद स्वर से कह रहे हैं--"निधन आओ मेरे लाल। तुझको अपने गले लगाकर मैं कब अपना जन्म सफल करूंगा? तू मेरे लिये देह धारण करके नर रूप होकर आया है!"

पुनः जगन्नाथ के पास जाकर कहने लगे--"जगन्नाथ! जगद्बंधो! हे दीनबन्धो! मैं तो जगत के बाहर का नहीं हूं! नाथ मुझ पर दया करो!"

वे थोड़ी देर में प्रेमोन्मत्त होकर कहने लगेः—

"उडिष्या जगन्नाथ भज विराज जी!"

अब नाचते २ पुनः नामस्मरण करने लगे—"श्री मन्नारायण! नारायण! नारायण! नारायण!" नाचते २ गाने भी लगेः—

* महेंद्रनाथ गुप्त। श्रीरामकृष्ण कथामृत इस अलौकिक ग्रंथ के लेखक और श्रीरामकृष्ण के परम भक्त। वे श्रीरामकृष्ण के सहवास में रहते थे और उन दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

"हलाम[1] यार[2] जन्य पागल तारे कई पेलाम[3] सई[4] ॥
ब्रह्मा पागल, विष्णु पागल आर पागल शिव ।
तिन पागले युक्ति करे भांगले[5] नवद्वीप ॥
आर एक पागल देखे[6] एलाम[6] वृंदावनेर माझे[7] ।
राइके राजा साजाये[8] आपनी काटाल[9] साजे ॥

धोती छूटकर गिर पड़ी उसकी भी सुधि नहीं है । कुछ समय के बाद वे आकर अपने पलंग पर बैठ गये ।

× × × ×

प्रातःकाल हो गया । भक्त लोग उठकर देखते हैं तो श्रीरामकृष्ण परमेश्वर का नामस्मरण करते हुए अपने कमरे में नाच रहे हैं ! कमर में धोती नहीं है ! बीच २ में गंगा जी को प्रणाम कर रहे हैं । बीच २ में देवादिकों की तसवीरों के पास जाकर प्रणाम करते हैं, कभी एकाध पद भी अत्यन्त तन्मयता से गाया करते हैं और फिर "जय जय दुर्गे ! जय जय दुर्गे" कहते हुए ताली बजाते और नाचते हैं ! कुछ समय के बाद कहते हैं—"सहजानन्द, सहजानन्द", "प्राण हे गोविन्द मम जीवन !" अन्त में कहते हैं—"वेद, पुराण, गीता, गायत्री, भागवत, भक्त, भगवान्; (गीता के सम्बन्ध में कहते हैं) "त्यागी, त्यागी, त्यागी", "तू ही ब्रह्म, तू ही शक्ति, तू ही पुरुष, तू तू ही नित्य, तू ही लीलामयी, तू ही चतुर्विंशति तत्त्व !"

× × × ×

---

१ हो गये, २ जिसके लिये, ३ पागये, ४ सखि । ५ र
६ देखकर आये, ७ वृन्दावन में, ८ सजाकर, ९ नौकर ।

संध्याकाल आ गया श्रीरामकृष्ण अपने पास बैठे हुए लोगों के साथ बोल रहे हैं। उसे बन्द करके एकदम नामस्मरण करने लगे। ताली बजाते हुए अत्यन्त मधुर स्वर से वे कहते हैं:--हरिबोल, हरिबोल, हरिमय हरिबोल, हरि हरि हरिबोल!" कुछ समय में श्रीरामचन्द्र का नामस्मरण करने लगे--"राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम!" नामस्मरण के बाद श्रीराम से प्रार्थना कर रहे हैं:--

"हे राम! हे राम! मैं तेरी शरण में आया हूं। हे राम! मैं भजन-हीन हूं, साधनहीन हूं। हे राम! मुझ पर कृपा कर। मुझे देह सुख नहीं चाहिये, लोकमान्यता नहीं चाहिये, अष्टसिद्धि नहीं चाहिये! केवल तेरे पादपद्मों की शुद्ध भक्ति ही मैं मांगता हूं, अपनी भुवन मोहिनी माया में मुझे मत फँसा। हे राम! मैं तेरी शरण में आया हूं कृपा कर!"

प्रार्थना इतने करुण स्वर से कर रहे हैं कि कैसा भी पाषाण हृदय मनुष्य क्यों न हो पसीजे बिना नहीं रह सकता।

× × × ×

बातें करते २ शाम हो गई। श्रीरामकृष्ण मधुर स्वर से नामस्मरण करने ल । उनके उस मधुर स्वर की उपमा नहीं दी जा सकती! सब मण्डली त् तटस्थ होकर श्रीरामकृष्ण के उस नामस्मरण को सुनने लगी। किसी २ ो ऐसा मालूम होने लगा कि मानो साक्षात् परमेश्वर ही प्रेममय धारण करके प्रार्थना करने का ढंग जीवों को सिखा रहे हैं। ष्ण कह रहे हैं—"माता! मैं तेरी शरण में आया हूं! माता! मुझे देह-हीं चाहिये लोकमान्यता नहीं चाहिये, अष्टसिद्धि नहीं चाहिये, मुझे केवल पद्मों में विशुद्ध भक्ति दे--निष्काम, विमला, अहैतुकी भक्ति दे--बस, हो और श्रीमुझे ऐसा बना कि मैं तेरी भुवन मोहिनी माया में कभी न फँसूं, और मु को तेरे मायामय संसार पर, काम कंचन पर कभी भी प्रेम न हो। माता!

तेरे सिवाय मेरा और कोई भी नहीं है। मैं भजनहीन, साधनहीन हूं, ज्ञान-भक्ति-वैराग्यहीन मुझ पर तू दया कर और मुझे तेरे पादपद्मों में शुद्ध भक्ति दे।"

उनका आत्म समर्पण सदा काल बड़ा विलक्षण था। मैं कौन हूं? मैं तो केवल माता के हाथ की कठपुतली, उसके हाथ का एक यंत्र मात्र हूं, वह जैसे चलावेगी वैसे चलूंगा, वह कहेगी उसी तरह करूंगा,—इसी भावना को लेकर वे सदा ईश्वर पर निर्भर रहा करते थे। आगे चलकर जब उनके पास बहुत से धर्मपिपासु लोग आने लगे उस समय उनसे बोलने में उनकी शंकाओं का समाधान करके उन्हें ईश्वर प्राप्ति का योग्य मार्ग दिखाने में उनका सारा समय ख़र्च होकर एक क्षण भर भी फुरसत उन्हें नहीं मिलती थी। तब उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। निरभिमानी और निरहंकार वृत्ति वाले श्रीरामकृष्ण—"माता का कार्य करना माता ही जाने, उसने मेरे पीछे व्यर्थ ही यह झंझट क्यों लगा दिया है—" कहते हुए एकाध दिन छोटे बच्चे के समान हठ करके अपनी माता से लड़ने लगते थे। एक दिन अपने भक्त लोगों से बोलते २ उन्हें भावावेश हो आया और उसी के वेग में वे अपनी माता से झगड़ने लगे। वे बोले—"माता! न जाने तेरे मन में क्या है? क्या इतनी भीड़ जमा होने देना ठीक है? (करुण स्वर से) खाने के लिये या थोड़ा बैठने के लिये भी फुरसत नहीं मिलती! (अपनी ओर उंगली दिखाकर) यह है क्या? एक फूटा ढोल। और उसे तू यदि इस प्रकार लगातार ठोकती रहेगी, तो न मालूम वह किस समय फूट जाय? और तब भला, माँ! तू क्या करेगी?"

और एक दिन वे दक्षिणेश्वर में भावावेश में माता से कहने लगे—"माता! तू यहां इतनी भीड़ क्यों जमा करती है? (कुछ समय चुप बैठकर) मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। सेर भर दूध में आध पाव पानी चाहे मिला लो; पर ऐसा नहीं कि दूध तो है एक सेर और पानी मिलाती हो पांच सेर! बकते २ मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं! तू जाने और तेरा काम जाने। मुझ से यह नहीं बनता! इतने आदमी यहां न लाया करो!"

वैसे ही और एक दिन भावावेश में वे कहने लगे—" माता ! तू राम, केदार, मास्टर, (एम्) इन सब को थोड़ी २ शक्ति दे; तब लोग पहिले उनके पास जाकर धर्म के तत्त्व को समझ लेंगे और फिर यहां आने पर एक दो बातों से उनका समाधान हो जावेगा । "

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण को किंचित् भी अहंकार नहीं था और वे श्री जगदम्बा का कार्य उसी की प्रेरणा से किस प्रकार यंत्रवत् किया करते थे । अस्तु—

अहंकार का नाम भी उनमें न रहने के कारण उन्हें लोकमान्यता, कीर्ति आदि की कोई परवाह नहीं थी । स्वामी प्रेमानन्द कहते थे—" एक दिन रात को लगभग १२ या १ बजे जागकर देखता हूं तो श्रीरामकृष्ण घबड़ाहट की मुद्रा बनाकर कह रहे हैं:—'माता ! मुझे कीर्ति मत दे', 'माता ! मुझे कीर्ति मत दे' और ऐसा कहते हुए थू २ करते २ गड़बड़ी में सारे घर में दौड़ धूप मचा रहे हैं । कमर में धोती भी नहीं है । थोड़ी देर में उन्हें अपने देह की सुधि हुई तब पूछने से वे कहने लगे—'आज उस समय अचानक मेरी नींद खुल गई, और देखता हूं तो एक टोकनी में कीर्ति की गठरी लेकर माता मेरे बिछौने के पास खड़ी होकर मुझे उसे स्वीकार करने के लिये कह रही है, पर उस गठरी की ओर मेरी दृष्टि जाते ही मुझे बड़ी घृणा मालूम हुई, और मैंने माता के अत्यन्त आग्रह करते रहने पर भी उसे लेने से साफ़ इन्कार कर दिया । तब कुछ हँस-कर माता चली गई । "

पीछे लिख चुके हैं कि गुरुपदवी पर आरूढ़ होकर वे प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति की ओर सदैव साधारण भावभूमि से और उच्च भावभूमि पर से देखा करते थे । इसी कारण उनकी दृष्टि हमारे समान एक देशीय नहीं होती थी और इसीलिये जब किसी बात के सम्बन्ध में अथवा किसी व्यक्ति के बारे में वे अपनी राय क़ायम करते थे, तो उसमें कभी गलती नहीं होती थी । आगे चलकर अपने भक्तगणों के साथ उनका जो अलौकिक प्रेमसम्बन्ध हुआ और

अपने भक्तों के सम्बन्ध में उनका जो मत रहता था, उन सब के यथार्थ रहस्य को समझने के लिये श्रीरामकृष्ण के स्वभाव की उपरोक्त विशेषता को पाठकों को ध्यान में रखने के लिये विनय करके अब हम श्रीरामकृष्ण के गुरुभाव की अन्य बातों का उल्लेख करते हैं।

९—असाधारण गुणोत्कर्ष।

कहँ रघुपति के चरित उदारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माँहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

मति अति नीच ऊँच रुचि आछी।
चहिय अमिय जग जुरै न छाँछी॥
छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।
सुनिहहिं बाल वचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता।
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

—तुलसीदास।

श्रीरामकृष्ण के अब तक के चरित्र को पढ़कर पाठकों को उनकी असाधारण भगवद्भक्ति, पवित्रता, त्याग, वैराग्य, सरलता, सत्यनिष्ठा आदि गुणों की कल्पना हो ही गई होगी। तो भी उनके गुणों का वर्णन करने के लिये यहां एक और प्रकरण रखने का यही उद्देश है कि उनके गुणों का उज्ज्वल चित्र पाठकों के सामने और भी स्पष्ट रूप से रखा जाय जिससे कि वे यह प्रत्यक्ष देख सकें कि किसी सद्गुण के उत्कर्ष की सीमा कहां तक पहुँच सकती है। श्रीरामकृष्ण की और बातों के समान उनकी सरलता, सत्यनिष्ठा, त्याग, वैराग्य आदि गुणों

की अद्भुत और आश्चर्यजनक वृद्धि हुई थी। उनके आश्रय में आने वाले हर एक का ध्यान उनके अलौकिक गुणों में से किसी एक की ओर अवश्य ही आकर्षित होता था और उसका उसके मन पर योग्य परिणाम हुए बिना नहीं रहता था। कोई उनके सरल स्वभाव को देखकर मुग्ध होता था, तो कोई उनकी ईश्वर निर्भरता पर आश्चर्य करता था। कोई उनके विलक्षण काम कंचन त्याग को देखकर विस्मित होता था और किसी के मन पर उनकी सत्यनिष्ठा का ही प्रभाव पड़ता था—इस प्रकार भिन्न २ स्वभाव के लोग उनकी ओर आकृष्ट होते थे। उन सब के मन में श्रीरामकृष्ण के प्रति बड़ा आदर भाव उत्पन्न होता था और सचमुच ही इतने भिन्न २ गुणों का ऐसा अपूर्व उत्कर्ष बहुत ही थोड़े मनुष्यों में पाया जाता है। नीचे लिखे वर्णन को पढ़कर पाठकों को इस कथन की सत्यता प्रतीत होने लगेगी।

निरभिमानता

श्रीरामकृष्ण में गर्व और अभिमान नाम को नहीं था। मैं कोई एक अमुक व्यक्ति हूं यह अहंकार उनके मन को कभी स्पर्श तक नहीं कर सका। उनके "अवतार" होने की ख्याति सर्वत्र होते हुए और बड़े विद्वान् और पण्डितों के उनके चरणों में लीन होने पर भी वे स्वयं बालक ही बने रहे! ज़रा भी अहंकार उनमें नहीं आया! कोई भी उनके दर्शन के लिये आवे तो उसके प्रणाम करने के पूर्व ही उसे श्रीरामकृष्ण ही प्रणाम कर लेते थे! "उनके रोम २ में यह भावना भरी थी कि मेरी ओर से जो कुछ होता है वह सब माता ही कराती है, वही चालक है, मैं केवल उसके हाथ की पुतली हूं!" "मैं" नाम की जब कोई वस्तु ही नहीं है तो अभिमान करे ही कौन? उनके पास आने वाले लोग उनके इस गुण को देखकर चकित हो जाते थे।

दक्षिणेश्वर में एक बार डॉक्टर सरकार किसी काम के लिये आये थे। काम हो जाने के बाद वे श्री काली माई के दर्शन के लिये मन्दिर में गये। अहाते के भीतर बगीचे में से जाते समय वहां के अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध से उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीरामकृष्ण वहां उस समय सहज ही टहल रहे थे। उन्हें बगीचे का माली समझकर डॉक्टर साहब ने उनसे दो चार फूल तोड़कर

उनका भी मान रखना चाहिये, अन्यथा माता को गुस्सा आ जाता है। समझे कि नहीं ? "

अन्तिम बीमारी में अधिक कष्ट होते देखकर भक्तगणों ने जब डॉ. सरकार को बुलवाने का निश्चय किया, तब उस विचार को सुनकर श्रीरामकृष्ण उन लोगों से बोले कि "उनके बुलवाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर तुम लोग उनसे यह कहो कि 'एक गरीब आदमी बीमार है, उसको पैसे ख़र्च करने की शक्ति नहीं है, आप कृपा करके उसे देखने के लिये चलिये।' इस पर यदि वे आवें तो आने दीजिये।" श्रीरामकृष्ण के भक्तगण यद्यपि बड़े धनी नहीं थे तथापि वे अपने गुरुदेव के लिये अपना सर्वस्व भी ख़र्च कर देने के लिये तैयार थे। श्रीरामकृष्ण को भी यह विदित था, पर तो भी वे यह सोचते थे कि हम फ़कीर लोग हैं, हमें इतना मान क्यों चाहिये ? भक्तलोगों को यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ और डॉक्टर को इस प्रकार कहने की आज्ञा न देने के लिये वे लोग श्रीरामकृष्ण से बारम्बार विनय करने लगे। अन्त में इतना तय हुआ कि डॉक्टर को बिना कुछ कहे ही बुला लिया जावे। श्रीरामकृष्ण ने सोच रखा था कि मैं ही डॉक्टर साहब से उनके यहां आने पर यह बात कह दूंगा। बाद में डॉक्टर साहब आये और उन्होंने स्वयं ही उनके भक्तों से कह दिया कि "मैं इनकी औषधि के लिये पैसे नहीं लूंगा।" यह वृत्तान्त आगे यथास्थान लिखा जावेगा !

एक दिन एक प्रसिद्ध नैय्यायिक पण्डित श्रीरामकृष्ण से भेंट करने गये। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के नमस्कार का उत्तर नमस्कार से न देकर पूछा कि "आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं क्या ?" श्रीरामकृष्ण बोले—"मैं सब का दास हूं। मेरे लिये सभी मनुष्य प्रणाम के योग्य हैं।" पण्डित जी बोले—"मेरे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर आपने नहीं दिया—मेरा प्रश्न है कि आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं क्या ?" श्रीरामकृष्ण बोले—"इस विश्वसृष्टि में सभी चीज़ों से मैं कम योग्यता का हूं, मैं सभी का दासानुदास हूं, मेरे लिये सभी प्रणम्य हैं।" पण्डित जी पुनः बोले—"मैं समझता हूं मेरा प्रश्न आपके ध्यान में नहीं आया। आपके गले में यज्ञोपवीत नहीं दिखाई देता, अतः आप ब्राह्मणों के

लिये प्रणम्य नहीं हैं; तथापि यदि आप सन्यासी हो तो आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं; इसीलिये पूछता हूं कि आप सन्यासी हैं क्या ? " परंतु श्रीरामकृष्ण ने पुनः वही उत्तर दिया। " मैं सन्यासी हूं " यह बात भी उनके मुख से नहीं निकली।

दंभशून्यता

श्रीरामकृष्ण के मन में अभिमान, या अहंकार नाम को भी न रहने के कारण उनमें दम्भ भी नहीं था। दाम्भिक बनकर अपने बड़प्पन का ही तो प्रदर्शन करना होता है। पर वे तो बड़प्पन, कीर्ति आदि के सम्बन्ध में बिल्कुल उदासीन थे। उन्होंने अपना दोष कभी भी छिपाकर नहीं रखा और न उन्होंने कभी अपने में न होने वाले गुणों का अपने में होना ही दिखाकर किसी को भ्रम में डाला। उनमें किसी प्रकार की छिपाने की आदत या छलछिद्र नहीं था। मन में उत्पन्न हुए भाव को उन्होंने कभी भी छिपाकर नहीं रखा और न उन्होंने किसी भी भाव का स्वांग करने का जानबूझ कर प्रयत्न ही किया। उनका बोलना स्पष्टता से और आचरण सरलता से परिपूर्ण रहता था !

एक दिन श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये कलकत्ते से कुछ धनी मारवाड़ी लोग आये हुए थे। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में नहीं थे; हृदय वहां था। वे लोग हृदय से श्रीरामकृष्ण के बारे में पूछताछ कर रहे थे, और हृदय भी उन लोगों के पास अपने मामा की मुक्तकण्ठ से स्तुति कर रहा था। इतने ही में श्रीरामकृष्ण वहां पहुँच गये। हृदय के कुछ शब्द उनके कान में भी पहुँच गये। सुनते ही वे हृदय की ओर रुख करके उसको डाँटते हुए बोले—" गधे ! तुझको यह पञ्चायत करने के लिये किसने कहा ? इन लोगों को धनी देखकर इनसे झूटमूठ गप्पें लगाकर कुछ लूटने का तेरा इरादा मालूम पड़ता है; मालूम नहीं माता ऐसे लोभी मनुष्यों को यहां क्यों रहने देती है। " और वे गला फाड़कर रोने लगे। थोड़ी देर में उन मारवाड़ियों की ओर देखकर कहने लगे—" भाइयों ! आप लोग इसका कहना एक न मानें। यह कहता है वैसा कुछ भी नहीं है। केवल इतना ही सच है, कि मैं जगदम्बा की एकनिष्ठ होकर भक्ति करता हूं, और यह जैसा कहता है वैसी योग्यता प्राप्त करने का इच्छुक हूं।

बस! इतना ही है।" उनका यह विलक्षण आचरण देखकर वे लोग चकित हो गये।

उनके बाहरी भेष को देखकर लोग उन्हें सन्यासी नहीं समझ सकते थे। किसी विशेष प्रकार का भेष रखना सांप्रदायिकता में शामिल है, और उसके साथ ही थोड़ी बहुत दांभिकता आ ही जाती है। इन दोनों बातों के लिये उनके पास कोई स्थान नहीं था।

यह सुनकर कि दक्षिणेश्वर में एक परमहंस रहते हैं एक पण्डित एक दिन वहां आये। श्रीरामकृष्ण के कमरे में जाकर पण्डित जी देखते हैं तो वे एक छोटे से पलंग पर बैठे हुए हैं और उनके आस पास भक्तगण बैठे हैं। यह सब ठाठबाट देखकर पण्डित जी को आश्चर्य हुआ और वे बोले—"क्या आप ही हैं वे परमहंस? वाह! वाह! ठीक है!" इधर उधर देखते २ उनका ध्यान उनके बिस्तर की ओर गया तब पण्डित जी बोल उठे—"वाह! मच्छरदानी भी है!" इतने में श्रीरामकृष्ण ने अपने जूते और चप्पल की ओर इशारा करके वे भी उन्हें दिखा दिये। पण्डित जी और भी अचम्भित होकर बोले—"वाह! बूट और चप्पल भी हैं!" श्रीरामकृष्ण उनको और भी कई चीजें दिखाने लगे तब तो पण्डित जी और भी चक्कर में पड़कर "वाह! यह भी है? बड़ा अच्छा है बाबा!" इस प्रकार के उद्गार निकालने लगे। कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण के पास ही वे पलंग पर बैठकर बोले—"भाई, आज तो हमको बड़ा सुन्दर परमहंस देखने को मिला।" तत्पश्चात् पास में बैठे हुए लोगों से पण्डित जी कहने लगे—"आप लोग सब सीधे-साधे भोले मनुष्य हैं, इसलिये बड़ी भक्ति के साथ इतनी दूर से यहां आते हैं; पर भाइयो, आप लोग बिल्कुल धोखे में हैं। अरे! ये काहे के परमहंस हैं? परमहंस के लक्षण शास्त्रों में क्या बताये गये हैं, आपको मालूम है?" ऐसा कहकर पण्डित जी शास्त्रोक्त वाक्य कहने लगे। इसके बाद सन्ध्याकाल हो जाने के कारण वे उठ गये और बोले—"आज का दिन व्यर्थ गया; भला सन्ध्यावंदन तो कर लें।" ऐसा कहकर पण्डित जी घाट पर जाकर सन्ध्या करके इष्टदेव का ध्यान करने लगे। थोड़ा ही समय बीता होगा कि पण्डित जी एकदम उठ बैठे और वहां से दौड़ते २ श्रीरामकृष्ण के

कमरे में आये। वहां देखते हैं तो श्रीरामकृष्ण समाधि में मग्न थे। पण्डित जी हाथ जोड़कर वहीं खड़े रहे, और परमेश्वर मानकर श्रीरामकृष्ण की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे।

किसी को दुःख नहीं पहुँचाना

श्रीरामकृष्ण ने कभी भी किसी को अपनी कृति से या वाणी द्वारा दुःख नहीं पहुँचाया और किसी का अनिष्ट उन्होंने अपने मन में भी नहीं सोचा। वे सदा यह प्रयत्न किया करते थे कि उनसे किसी को कोई कष्ट न पहुँचे। एक दिन दरवाज़े पर फल बिकने आये। माता जी पूछने लगीं, "क्या फल खरीद लूं!" श्रीरामकृष्ण बोले, "नहीं।" इस पर माता जी कुछ उदास मुँह करके चली गईं। उन्हें इस प्रकार जाते देखकर श्रीरामकृष्ण अपने पास बैठे हुए शिष्य से बोले, "अरे! जा, उसको कह दे कि तुझको जितने फल लेने हों सो ले ले। मेरे कारण उसकी आँखों में पानी आया हुआ यदि मुझे दिखाई दिया, तो मेरी जगदम्बा के प्रति भक्ति भी नष्ट हो जावेगी! जा जल्दी कह दे।" उनकी ज़बान में कई बार "साले" शब्द आ जाता था, परन्तु उसका अर्थ "मूर्ख" या "गधा" ही हुआ करता था। उनके मन में अपने सम्बन्ध में कोई बुरी भावना नहीं है यह बात सभी जानते थे। रात दिन परमेश्वर के चिन्तन की तन्मयता के कारण उन्हें अपने देह की भी सुधि नहीं रहती थी, तथापि वे अपनी सभी चीज़ों की ओर ध्यान रखते थे क्योंकि उनका उद्देश यह था कि उनके कारण किसी को कष्ट न होने पावे। कलकत्ते में किसी भक्त के घर जाते समय वे अपना सारा आवश्यक सामान—हाथ-रूमाल, थैली आदि साथ ले जाना कभी नहीं भूलते थे। कई बार कलकत्ते से लौटते समय बहुत रात हो जाती थी और बगीचे का फाटक बन्द हो जाता था। ऐसे समय वे चौकीदार को पुकारकर उससे चार मीठे शब्द बोल लिया करते थे, और इतनी रात को ख़ासकर अपने लिये ही फाटक खोलने के श्रम के बदले उसे वे कुछ न कुछ बख़्शीश अवश्य देते थे। किसी को कोई काम करने के लिये कहने में उनको बड़ा संकोच और पशोपेश होता था। "न जाने, अपना काम बताने से उसे कोई कष्ट हो।"

एक दिन प्रातःकाल स्नान करने के बाद रामलाल (अपने भतीजे) को पुकारकर बोले, " क्यों रे ! क्या तुझको आज दोपहर को शहर में (कलकत्ता) जाना है ? "

रामलाल—" नहीं तो। क्यों भला ? "

श्रीरामकृष्ण—" कुछ ख़ास बात नहीं है। मैंने कहा, तू बहुत दिनों से शहर में नहीं गया है; यहां लगातार रहते २ अच्छा नहीं लगता होगा, इसी कारण पूछा। बस इतनी ही बात है। "

रामलाल—" मुझको दोपहर को यहां कोई काम नहीं है: आपका कोई काम हो तो कहिये, हो आऊंगा। "

श्रीरामकृष्ण—" नहीं, नहीं, ख़ास उसी के लिये जाने लायक़ कोई काम नहीं है पर यदि तू जाने वाला ही हो तो—"

रामलाल—" कोई हर्ज नहीं। मैं हो आऊंगा ! "

श्रीरामकृष्ण—" अच्छा तो—पर इसी के लिये न जाना भला—तो ऐसा करो—जाते समय सन्दूक से पैसे ले जाना और कोई नाव किराये से कर लेना। शाम तक मौज से इधर उधर घूमकर वापिस आ जाना और ऐसा करना—वहां पर मिठाई और काजू किशमिश हैं, उसकी पूड़ियाँ बांधकर साथ में रख लेना और उसे ले जाकर नरेन्द्र को दे देना ! समझे ? "

रामलाल दादा कहते थे—" उसके पहले दिन एक मारवाड़ी ने मिठाई और काजू किशमिश ला दी थीं। उसे वे नरेन्द्र के पास भेजना चाहते थे। पर ऐसा कैसे कहें कि ' जा, यह तू नरेन्द्र को दे दे। ' मुझको कष्ट न मालूम पड़े इस उद्देश से उन्हें इतना संकोच हुआ और इतना घुमा फिराकर बोलना पड़ा। " अस्तु—ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

अन्तिम बीमारी में उनकी सेवा शुश्रुषा करने के लिये उनकी भक्त मण्डली रात दिन उनके साथ रहने लगी। अपने लिये इतने लोगों को कष्ट

होते देखकर उन्हें बड़ा बुरा लगता था और वे बारम्बार यह बात कहते भी थे। अपनी सेवा करने के लिये रहने वालों के खाने पीने का ठीक २ प्रबन्ध हुआ है या नहीं इस बात की जाँच वे बारम्बार किया करते थे। कोई बहुत देर तक उनके पैर दबाता रहे या उनके लिये कोई दूसरा काम बहुत समय तक करता रहे, तो वे उसे अपने कारण कष्ट होते देखकर उसे कुछ देर तक बन्द करने के लिये, या थोड़ी देर तक घूम आने के लिये, या दूसरे किसी को भेजने के लिये कहा करते थे। दूसरे के आराम और सुभीते का वे सदा बहुत ध्यान रखते थे।

शान्ति; चित्त की समता

दूसरों को उनसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे इस बात की वे जैसी चिन्ता करते थे वैसे ही दूसरों से उन्हें कितना भी कष्ट हो वे उसे बड़े आनन्द के साथ सह लिया करते थे। वे सदा कहते थे कि "सज्जन का क्रोध मानो पानी का दाग।" कपड़े पर पानी के छींटे पड़ गये तो कुछ समय दाग के समान दिखते हैं पर उससे यथार्थ में दाग ही नहीं पड़ता और वह दाग शीघ्र ही मिट जाता है। उनका ख़ुद का भी यही हाल था। उन्हें कभी भी क्रोध नहीं आता था। और यदि कभी क्रोध आया हुआ सा दिखे भी, तो वह बहुत देर तक नहीं टिकता था। सभी स्थानों में परमेश्वर ही भरा हुआ है और जो कुछ होता है सो सब परमेश्वर की इच्छा से ही होता है, इस प्रकार की दृढ़ धारणा जहां हो गई है वहां क्रोध कौन करे और किस पर करे? कैसा भी विकट प्रसंग क्यों न हो, उनके मन की समता विचलित नहीं होती थी।

मथुरानाथ की मृत्यु के बाद मन्दिर का प्रबन्ध त्रैलोक्य बाबू के ज़िम्मे आ पड़ा। एक दिन किसी कारण हृदय पर त्रैलोक्य बाबू गुस्सा हो गये और उन्होंने उसे तुरन्त मन्दिर से निकल जाने की आज्ञा दे दी और क्रोध के आवेश में उनके मुँह से यह भी निकल पड़ा कि श्रीरामकृष्ण का भी यहां रहने का कोई

काम नहीं है। यह बात श्रीरामकृष्ण के कान तक पहुँचते ही वे जैसे थे वैसे ही उठकर जाने के लिये निकल पड़े, और अहाते के फाटक तक पहुँच भी गये। उनको जाते देखकर और यह सोचकर कि उनका कोई अपराध नहीं है तथा अपने ही अकल्याण होने के डर से, त्रैलोक्य बाबू उनके पीछे २ दौड़े और उनको वहां से न जाने के लिये बिनती करने लगे। श्रीरामकृष्ण भी मानो कुछ हुआ ही न हो, इस तरह हँसते २ अपने कमरे में आ गये!

उन्हें कोई कुछ कह दे या उनकी निन्दा कर बैठे, तो उसका उन पर कोई असर नहीं होता था। श्रीयुत केशवचन्द्र सेन ने 'सुलभ समाचार' में उनका वृत्तान्त छपा दिया तब से उनके सम्बन्ध में भिन्न २ समाचार पत्रों में बारम्बार लेख निकला करते थे। कोई २ उनकी निन्दा भी करते थे। उन्हें बदनाम भी करते थे। अमुक समाचार पत्र ने आपकी निन्दा की है ऐसा कोई उनसे बता दे, तब वे कहते—"निन्दा की तो की, मैं उधर ध्यान ही क्यों दूं? जिसे जैसा मालूम होगा वैसा ही तो वह कहेगा।" एक दिन तो वे केशवचंद्र से बोले—"क्यों रे केशव! क्या मैं मान का भूखा हूं जो तू समाचार पत्रों में मेरा वृत्तान्त लिखता है? हुआ सो हुआ, अब आगे कुछ भी न लिखना।" स्वयं अपनी निन्दा और स्तुति के विषय में वे इतने उदासीन थे, तथापि यदि कोई श्री काली-माई की निन्दा करे तो वे धैर्य छोड़कर उस पर क्रुद्ध हो जाते थे। स्वामी विवेकानन्द को पहिले पहल ईश्वर के साकार स्वरूप पर विश्वास नहीं था और वे उसके सम्बन्ध में बारम्बार श्रीरामकृष्ण से बहस किया करते थे। एक दिन बहस के जोश में स्वामी जी काली के प्रति कुछ निन्दा के शब्द कह गये। श्रीराम-कृष्ण बोले, "अरे बाबा! तू मुझको चाहे जैसा कहा कर। पर मेरी माता की निन्दा क्यों करता है?" इस पर भी विवेकानन्द ने कहना नहीं छोड़ा, तब तो वे बडे गुस्से से बोले, "निकल साले यहां से, जा भग, मेरे यहां आकर मेरी माता की बदनामी करता है, आज से यहां मत आना।" यह सुनकर विवेका-

नन्द को बड़ा बुरा लगा, परन्तु वे वहां से गये नहीं वरन् वहीं एक बाजू जाकर बैठ गये। कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण से रहा नहीं गया, और उठकर उनके समीप गये और किसी छोटे बच्चे के समान हाथ फेरते हुए उनसे बोले— "भला तू मेरी माता की निन्दा क्यों करता है? इसीसे मेरा धीरज छूट गया। मेरी माता को कोई कुवाक्य कहे तो मैं कदापि नहीं सह सकता, तुझको जो कहना हो सो मुझे कह लिया कर!"

उनके पास सदा प्रातःकाल से रात को ९–१० बजे तक लगातार मनुष्यों का आना जाना जारी रहता था। कभी २ तो उन्हें चार कौर खाने की भी फुरसत नहीं मिलती थी। आने वालों में हर प्रकार के लोग रहा करते थे और प्रत्येक की यही इच्छा रहती थी कि श्रीरामकृष्ण मुझसे अधिक समय तक बोलें! इस कारण श्रीरामकृष्ण को बड़ा कष्ट होता था। पर वे कभी भी क्रुद्ध नहीं होते थे, वे सभी कष्टों को आनन्दपूर्वक सह लेते थे।

सरलता

बालकपन से ही श्रीरामकृष्ण का स्वभाव अत्यन्त सरल था। लोगों के छक्के पंजे उनकी समझ में नहीं आते थे। वे कहते थे कि—"अनेक जन्मों के पुण्य से मनुष्य को सरल और उदार स्वभाव प्राप्त होता है।"—"मनुष्य सरल स्वभाव वाला हुए बिना ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता।" रहे एक और दिखावे दूसरा– ऐसा छलछिद्र उनके पास बिल्कुल नहीं था। जो करना हो उसे मनसा, वाचा और-कर्मणा करते थे; जिस पर विश्वास करते उस पर भी उसी प्रकार पूर्ण विश्वास करते। बचपन से ही उनका यही स्वभाव था और इस सरलता और विश्वास के बल पर उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति की। अमुक कार्य करना है यह निश्चय हो जाने पर वे अक्षरशः उस निश्चय के अनुसार चलते थे। 'ऐसा ही क्यों' और 'वैसा ही क्यों'—इस प्रकार के तर्क वितर्क वे कदापि नहीं करते थे। यही स्वभाव उनका

बाल्यकाल से था। इस चरित्र में अब तक उनकी इस विलक्षण सरलता की अनेक बातें आ चुकी हैं--और भी कुछ बातें यहां पर दी जाती हैं।

बचपन में एक दिन वे अपने घर के पास की बाड़ी में खेल रहे थे। वह घास में उनके पैर को किसी जन्तु ने काट दिया। उन्हें ऐसा भास हुआ कि साँप ने ही उन्हें काटा है! उन्होंने सुना था कि यदि साँप फिर से काटे तो विष उतर जाता है। इसी कारण वे बिल में अपने हाथ को डालकर साँप के दुबारा काटने की राह देखने लगे। इतने ही में उधर से एक मनुष्य जा रहा था, वह बोला--" अरे बाबा! ऐसा नहीं है। अगर साँप पुनः उसी जगह को काटे तो विष उतरता है। किसी अन्य स्थान में काटने से विष नहीं उतरता।" यह सुनकर उन्होंने अपना हाथ बाहर निकाल लिया।

साधक अवस्था में वे दक्षिणेश्वर गांव में किसी के यहां अध्यात्म रामायण सुनने जाया करते थे। एक दिन पौराणिक महाराज ने कथा कहते हुए यह बताया कि " रामनाम का उच्चारण करने से मनुष्य निर्मल होता है।" बाद में एक दिन श्रीरामकृष्ण ने पौराणिक महाराज को शौच के लिये जाते देखा। उस समय उन्हें उस दिन की कथा की बात याद आ जाने के कारण मन में बड़ी अशान्ति होने लगी और चैन नहीं पड़ती थी। तब तो वे वैसे ही पौराणिक महाराज के पास पहुँचकर बोले--" महाराज! यह कैसी बात है? रामनाम के उच्चारण से आप अब तक भी निर्मल कैसे नहीं हुए?" उनके इस प्रकार बालवत् सरल विश्वास को देखकर पौराणिक की आँखें डबडबा आईं और वे बोले--" अरे बाबा! रामनाम से मन का मैल दूर होता है भला, शरीर का नहीं।" तब कहीं श्रीरामकृष्ण के जी में जी आया।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "मथुर और उनकी पत्नी जहां सोते थे वहीं मैं भी सोता था। मेरी उस समय उन्मादावस्था थी। वे दोनों ही मुझसे छोटे लड़के के

समान व्यवहार रखते थे। वे मेरा लाड़ प्यार भी उसी तरह करते थे। उन दोनों की सब बातें मुझे सुनाई देती थीं। एकाध बार मथुर ने पूछा कि "बाबा, क्या आपको हमारी बातें सुनाई देती हैं!" मैं कहता—"हां, सुनाई देती हैं।"

"एक बार उसकी पत्नी को उसके विषय में कुछ शंका होने लगी, तब वह बोली कि 'बाहर कहीं भी जाना हो तो बाबा को अपने साथ ले जाया करें।' एक दिन वह मुझे अपने साथ ले गया। एक जगह वह तो ऊपर की मंजिल पर चला गया और मुझे नीचे ही छोड़ दिया। लगभग आधे घन्टे के बाद वह नीचे आया और मुझसे बोला, 'चलो बाबा। चलो गाड़ी में बैठकर चलें।' घर आने पर उसकी पत्नी के पूछने पर मैंने सब बता दिया। मैं बोला, 'यह मुझे गाड़ी में बिठाकर कहीं ले गया और मुझे नीचे छोड़कर आप ऊपर चला गया और आधे घन्टे में लौटकर बोला, 'हां बाबा! चलो अब गाड़ी में बैठकर चलें।"

वयोवृद्धि होने पर बालक युवक होता है और युवक वृद्ध होता है और बाल्यकाल की मधुर स्मृति केवल कल्पना का विषय ही रहती है—यह तो प्रकृति का नियम है, परन्तु श्रीरामकृष्ण के अद्भुत चरित्र में यह नियम बदल गया था! वे तो जन्म भर बालक ही रहे और उनमें बाल्यकाल का सरल स्वभाव और खुला दिल ज्यों का त्यों क़ायम रहा! बिल्कुल आख़िरी दिन तक भी उनके बाल स्वभाव पर ही बहुतेरे लोग मोहित थे।

उनके बालस्वभाव से जो परिचित नहीं थे उन्हें कई बार उनका बर्ताव असभ्य और ढोंगी मालूम पड़ता था। परन्तु जिन्हें उनके अद्भुत स्वभाव की जानकारी रहती उन्हें उसमें कोई विचित्रता नहीं दिखाई देती थी। बालक के शरीर पर जैसे कपड़ा बहुत समय तक नहीं रह सकता वही हाल श्रीरामकृष्ण का था। उनकी धोती कई बार खुली ही रहती थी और उसके गिर जाने पर भी

उनका ध्यान उस ओर नहीं जाता था। सामने बड़े २ विद्वान लोग और बड़े २ अधिकारी, राजा, महाराजाओं के बैठे रहते में भी धोती गिर जाने पर उस ओर नका ध्यान नहीं रहता था। यह बात कई लोगों ने प्रत्यक्ष देखी है।

बालकों का जैसा स्वभाव रहता है कि भूख लगते ही वे माँगकर खा लेते हैं उसी तरह श्रीरामकृष्ण भी किया करते थे। कई बार और अनेक स्थानों में उन्होंने इसी तरह भूख लगते ही माँगकर खाया है।

उनके सत्संग में बहुत सा समय बिताने वाले लोगों के ध्यान में आ जाता था कि देह की सुध रहते समय भी श्रीरामकृष्ण को बालकों के समान चार क़दम भी ठीक २ चलते नहीं बनता था!

नई २ वस्तुओं के देखने की जैसी उत्सुकता बालकों को रहती है और देख लेने से जैसे उनको बहुत आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का भी हाल था! एक बार जहाज़ के एंजिन की भक्भक् आवाज़ कैसे होती है यह देखने की इच्छा उन्हें हुई। भक्त लोगों ने उन्हें जहाज़ पर लेकर सभी यंत्र दिखाये तब उनको अपार आनन्द हुआ!

कलकत्ते में किसी समय यदि किसी नये रास्ते से उनकी गाड़ी निकल पड़ती थी, तो वहां की नई २ इमारतों और नये २ दृश्यों को देखकर वे आनन्द में मग्न हो जाते थे और "यह क्या है?", "वह क्या है?", "इसे क्या कहते हैं?", "उसे क्या कहते हैं?" इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लगा देते थे जिससे साथ में बैठा हुआ मनुष्य उत्तर देते २ थक जाता था!

उन्हें कभी २ नई २ जानकारी प्राप्त करने और नये विषयों को सीखने की इच्छा होती थी, तथापि उन्होंने अपने मन को एक परमेश्वर के ही चिन्तन करने का इतना आदी बना डाला था कि दूसरा आदमी उन्हें बातें बताता था परन्तु उस ओर तुरन्त ही उनका दुर्लक्ष हो जाता था!

एक दिन वे " एम् " से बोले--" क्यों रे ! क्या तुम्हारी अंग्रेजी में न्यायशास्त्र पर कुछ पुस्तकें है ? "

" एम् " के 'हां' कहने पर उन्होंने संक्षेप में उसकी जानकारी देने के लिये कहा। " एम् " ने बताना शुरू किया परन्तु शीघ्र ही उसे दिखाई दिया कि श्रीरामकृष्ण का ध्यान अपने बोलने की ओर बिल्कुल नहीं है। यह देखकर उन्होंने बोलना बंद कर दिया।

वैसे ही एक दिन ग्रहण था। उस दिन ग्रहण क्यों होता है यह जानने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई। इसलिये एक मनुष्य उनको ज़मीन पर आकृतियां खींचकर वह विषय समझाने लगा। थोड़े ही समय में वे उसे एकदम बंद करने के लिये बोले और उन्होंने कहा--" बस ! बस ! मेरा सिर घूमने लगा ! "

एक बार प्राणि संग्रहालय (चिड़ियाखाना, Zoological gardens) में जाकर वहां के सिंह को देखने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई। जब लोग उन्हें गाड़ी में उधर ले जाने लगे तब रास्ते में ही " अब मुझे अपनी माता का वाहन देखने को मिलेगा " इसी विचार में मग्न हो जाने के कारण उन्हें भावावस्था प्राप्त हो गई। तब वे कहने लगे—" माता ! माता ! मुझे बेहोश मत करो। मैं तो तेरा वाहन देखने जा रहा हूं। " वहां पहुँचने पर सिंह को देखते ही उन्हें समाधि लग गई।

एक दिन वे अपने भक्तों के साथ प्रख्यात पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से भेंट करने गये। गाड़ी से उतरकर उनके बाड़े में जाते समय अपने कोट के बटनों को खुले देखकर वे "एम्" से पूछने लगे—" क्यों रे ! कोट के बटनों को ऐसे ही रहने दूं, कि ठीक तरह से लगा लूं ? " "एम्" बोला—" महाराज वैसे ही रहने दें तो भी कोई हर्ज नहीं है ! " यह सुनते ही मानो उन्हें सन्तोष हो गया। कोई बड़े पण्डित या कोई प्रसिद्ध सज्जन उनसे भेंट करने के लिये आये

वाले हों तो प्रथम उन्हें छोटे बालक के समान डर लगता था ! उन्हें मालूम पड़ता था कि मैं तो कुछ पढ़ना लिखना जानता नहीं हूं और ये तो इतने बड़े पण्डित हैं; तो अब कैसे निपटेगा ? उनके इस स्वभाव को देखकर पास में बैठने वालों को बड़ा आश्चर्य होता था, पर कई बार उनके बर्ताव को ध्यानपूर्वक देखने से पता लगता था कि इसका कारण उनका बालस्वभाव ही है और कुछ नहीं ! अपरिचित मनुष्य को देखकर जैसे छोटा बच्चा पहिले झिझकता है या सकुचाता है, परन्तु वही थोड़ा परिचय हो जाने बाद उसके कन्धे पर चढ़कर उसके बालों को खींचने लग जाता वैसा ही हाल श्रीरामकृष्ण का था ।

एक बार पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि श्रीरामकृष्ण से भेंट करने आये थे। उस दिन की बात श्रीरामकृष्ण ने ही अपने एक भक्त से बताई । वे बोले—" तुम को तो मालूम ही है कि मैं लिखने पढ़ने के नाम से शून्य हूं ! इसलिये उस पण्डित के आने की बात सुनकर मुझे बड़ा डर लगने लगा । यहां तो धोती की भी सुधि नहीं रहती तब फिर उससे बोलने की बात तो दूर रही ! माता से बोला, ' माता, तू तो जानती है कि तेरे सिवाय मेरा दूसरा कोई नहीं है, मुझ-को सम्हालने वाली तू ही है । ' फिर इससे बोला कि ' तू यहीं रहना ' और उससे बोला कि ' तू कहीं न जाना । ' तुम सब पास में रहोगे तो उतना ही धैर्य रहेगा । हो गया—बस, पण्डित जी आ पहुँचे और वे सामने बैठकर बोलने लगे और मैं तो उनकी ओर देखता ही रहा । इतने में ऐसा दिखाई दिया कि माता मुझे उनका अन्तःकरण ही खोलकर दिखा रही है और कह रही है— ' केवल शास्त्रों और पुराणों को पढ़ने का क्या उपयोग है, विवेक और वैराग्य के बिना कुछ भी लाभ नहीं होता ! ' इसके बाद मेरा डर और कांपना मालूम नहीं कहां भाग गया और भीतर से ज्ञान की लहरें उठने लगीं और मुँह से मानो बातों का फव्वारा छूटने लगा ! ऐसा मालूम हुआ कि जैसे २ भीतर की जगह खाली हो रही है वैसे २ भीतर ही और कोई उस खाली स्थान को पूरा कर

रहा है। हमारे गांव की ओर अनाज नापते समय एक मनुष्य 'राम रे, दो रे, तीन रे, चार रे,' कहते हुए नापता जाता है और धान्यराशि को कम होते देख दूसरा उसमें और अनाज डालते जाता है। वैसा ही हो गया! पर मैं क्या बोलता था इसकी मुझको बिल्कुल सुध नहीं थी! कुछ देहभान आने पर देखता हूं तो पण्डित जी की आँखों से लगातार अश्रुधारा बह रही है!! बीच २ में ऐसी अवस्था हो जाती है। और भी एकबार ऐसा ही हुआ था। केशव ने सन्देशा भेजा कि 'यहां कुक् नामक एक साहब आये हैं, उन्हें मैं लेकर आता हूं। आप हमारे साथ नौका पर बैठकर घूमने चलिये।' यह सन्देशा सुनते ही मुझे इतना डर लगा कि मैं तुरन्त ही लोटा उठाकर ही चला! पर उन लोगों के आने पर जब मैं नौका पर चढ़कर गया तब कल के समान ही हुआ और उस समय तो मैं कितनी ही देर तक बोलता रहा। बाद में ये सब लोग कहने लगे कि आपने आज कितना सुन्दर उपदेश दिया! पर मुझसे तुम पूछोगे तो उसमें का कुछ भी याद नहीं है!" अस्तु—

एक बार झाऊतला की ओर शौच के लिये जाते २ वे रास्ते में गिर पड़े जिससे उनके बाँये हाथ में चोट आ गई। उससे उन्हें बड़ी तकलीफ़ हुई। हाथ के आराम होने में बहुत समय भी लग गया। उनकी इस बीमारी के समय एक दिन एक गृहस्थ कलकत्ते से उनके दर्शन के लिये आये। श्रीरामकृष्ण ने उनसे "आप कौन हैं? कहां से आये है?" इत्यादि प्रश्न पूछे। वे कलकत्ते से आये हैं सुनकर श्रीरामकृष्ण ने कहा कि "आप इन मन्दिर आदि को देखने आये होंगे?" वे बोले—"नहीं महाराज! आप ही को देखने के लिये मैं आया हूं।" इतना सुनकर श्रीरामकृष्ण छोटे बालक के समान रोते २ कहने लगे—"अरे बाबा! मुझको क्या देखोगे? मेरा हाथ टूट गया है। ओ मां! हाथ में बड़ा दर्द हो रहा है।" यह हाल देखकर उस मनुष्य को यही नहीं सूझा कि इनके साथ अब क्या बोलूं! कुछ देर के बाद उनकी सांत्वना करने के लिये वे

सज्जन बोले—" महाराज ! ऐसा नहीं करना चाहिये । हाथ जल्दी ही आराम हो जावेगा । " यह सुनकर बालक के समान बड़ी उत्सुकता से वे कहने लगे—" सच कहते हैं ? जल्दी ही मेरा हाथ आराम हो जायगा ? " और पास में बैठे हुए एक मनुष्य से कहने लगे-" अरे सुना क्या ? ये बाबू कलकत्ते से आये हैं। उनका कहना है कि मेरा हाथ जल्दी ही आराम हो जायगा । "

एक दिन रामचन्द्र दत्त और मनमोहन मित्र श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिये गये । श्रीरामकृष्ण को फूलगोभी की तरकारी बहुत पसन्द थी, इसलिये ये लोग अपने साथ उनके लिये फूलगोभी ले गये थे। उस वक्त शूल पीड़ा के कारण उनके पेट में बड़ा दर्द हो रहा था और पेट पीड़ा में उससे नुक़सान होता है इस लिये हृदय उनको फूलगोभी की तरकारी खाने नहीं देता था। फूलगोभी को देखते ही वे इन लोगों से उसे ऐसे स्थान में रखने के लिये कह रहे थे जहां हृदय उसे न देख सके । इतने ही में हृदय वहां पहुँच गया । उसे देखते ही अपराधी लड़के के समान वे कहने लगे—" नहीं रे हृदू ! मैंने उनसे लाने के लिये नहीं कहा था ! वे आप ही उसे ले आये हैं सच ! वे ख़ुद ही लाये हैं ! चाहो तो पूछ लो उनसे ! "

उनके पास बड़े २ विद्वान्, परिण्डित आदि आया करते थे । उन्हें देखकर एकबार उनके मन में आया कि " मैं भी यदि उन्हीं के समान विद्वान् और परिण्डित होता तो कैसा आनन्द आता । " उस दिन वे भावावस्था में माता से कहने लगे—" माता ! भला तूने मुझे ऐसा निरक्षर मूर्ख क्यों बनाया ? मूर्ख होना बड़ी लज्जा की बात है । " श्रीरामकृष्ण बताते थे कि " इतने में मुझे एक पहाड़ के समान कूड़ा करकट का ढेर दिखाई दिया । उसकी ओर उंगली दिखाकर माता बोली—' हँ; देख यहां यह विद्या है, चाहिये तुझको ? ' त्यों ही मैं बोल उठा—' माता ! मुझको नहीं चाहिये तेरी यह विद्या ! मुझको अपने पादपद्म में शुद्ध भक्ति दे, वही मेरे लिये बस है । "

पवित्रता

सदैव ईश्वर चिन्तन में तन्मय रहने के कारण श्रीरामकृष्ण का मन अत्यन्त पवित्र हो गया था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनके मन में अपवित्र विचारों का आना ही असम्भव था। परन्तु उनकी इस मानसिक पवित्रता का उनके शरीर पर भी कितना परिणाम हुआ था उसे देखकर मन आश्चर्य में डूब जाता है। चाहे जिस तरह के मनुष्य के हाथ का पानी तक उनसे पिया नहीं जाता था। मनुष्य किस तरह का है यह बात वे तत्काल पहिचान लेते थे और वह यदि कुछ लेकर आया हो तो उसे बुरा न लगे इस हेतु से उसकी चीज़ों को वे सिर्फ़ छूकर ही एक ओर रख देते थे और उसे वे स्वयं कभी नहीं खाते थे। कई बार ऐसा होता कि भक्त मण्डली से उनकी बातें होती रहतीं, और इसी बीच में प्यास लगने के कारण वे पानी माँगते, पानी कौन लाया इस बात की ओर उनका ध्यान भी नहीं रहता था; परन्तु जब वे उसे पीना चाहते उस समय उनका हाथ अकड़ने लगता था और वह पानी उनसे पीते ही नहीं बनता था, मानो उनका शरीर ही उस अपवित्र पानी को पीने से इन्कार कर रहा हो! तब वे फिर पानी मँगाते थे और दूसरे किसी के ला देने पर पीते थे। स्वामी विवेकानन्द के सामने एक बार ऐसी ही घटना हुई और अपने सदा के जिज्ञासु स्वभाव के कारण उन्होंने पानी लाने वाले मनुष्य के आचरण के सम्बन्ध में बारीकी से जाच की। तब उन्हें यह पता लगा कि सचमुच ही वह मनुष्य खराब आचरण वाला है।

उनको अर्पण करने के लिये लाये हुए पदार्थ का अग्रभाग यदि पहिले किसी दूसरे को दे दिया जाता था तो वह पदार्थ उनसे ग्रहण करते नहीं बनता था!

समाचार पत्रों को वे कभी स्पर्श नहीं करते थे; क्योंकि उनमें सारे लड़ाई, झगड़े और प्रपंच की बातें रहती हैं! एकबार वे एक भक्त के यहां उसके निमंत्रण से भजन करने गये थे। उनके बैठने के लिये जो आसन तैयार किया

294.5213 ~~22751~~
परम
LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 121161

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving